ओ३म्

क्रान्ति के अग्रदूत

लेखक :
आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'

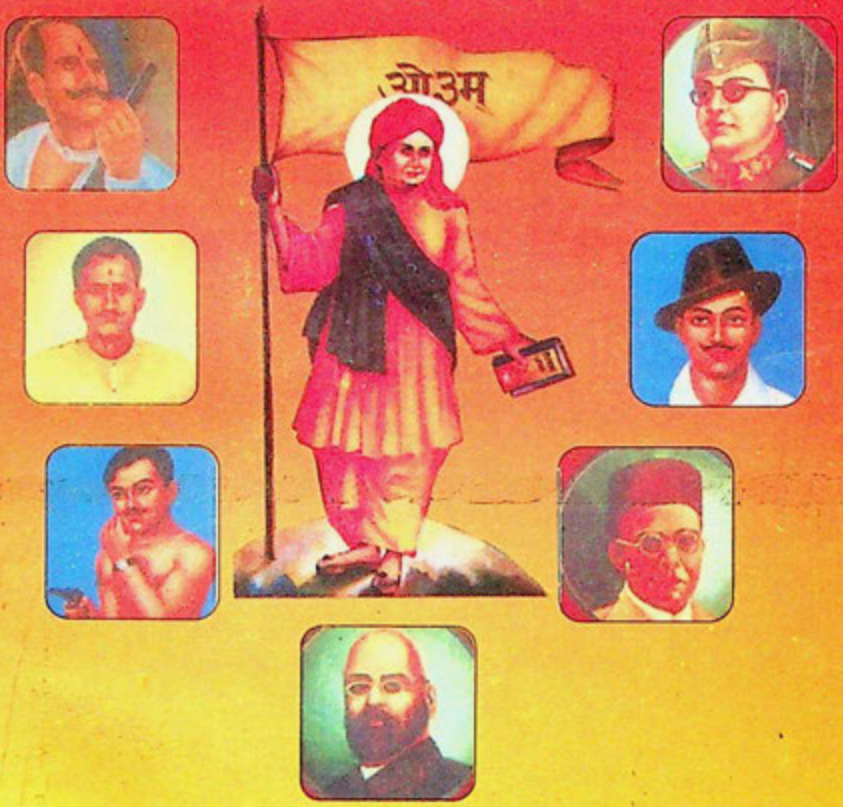

सरस्वती साहित्य संस्थान
295 जागृति एन्कलेव, दिल्ली-92 फोन:- 22152435

क्रांतिकारियों के सरताज, महान देशभक्त एवं बलिदानी वीर शहीद भगतसिंह

शहीद-ए-आज़म सरदार भगत सिंह का जन्म 28 सितम्बर, 1907 को पश्चिमी पंजाब के लायलपुर ज़िला के गांव बंगा चक, जी.बी. 105 में सरदार किशन सिंह एवं माता विद्यावती के यहां हुआ। इनके दादा सरदार अर्जुन सिंह एक दृढ़ देशभक्त थे जिनके तीनों पुत्रों सरदार किशन सिंह, सरदार अजीत सिंह और सरदार स्वर्ण सिंह ने भी देश के स्वतंत्रता संग्राम में बढ़चढ़कर हिस्सा लिया और जेल की यातनाएं सहीं। भगत सिंह के चाचा सरदार स्वर्ण सिंह ने तो जेल की यातनाएं सहते हुए युवावस्था में ही मातृभूमि की वेदी पर प्राण न्यौछावर कर दिए। सरदार अजीत सिंह भी मांडले जेल से छूटकर उसी दिन आए थे जिस दिन भगत सिंह का जन्म हुआ।

भगत सिंह ने डी.ए.वी. स्कूल से दसवीं कक्षा पास की और फिर नेशनल कालेज में पढ़ने लगे। इनके माता-पिता ने उन्हें विवाह बंधन में बांधना चाहा किन्तु उनके मन में देश प्रेम की चिंगारी सुलग रही थी। अतः वे घर से भागकर दिल्ली चले आए, यहां से वे कानपुर आए जहां उनका सम्पर्क गणेश शंकर विद्यार्थी से हुआ।

काकोरी काण्ड के समय से ही भगत सिंह एक महान क्रांतिकारी के रूप में जाने जाते थे। काकोरी काण्ड के शहीदों राम प्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफ़ाक उल्लाह और रोशन सिंह को फांसी के बाद उन्होंने चंद्रशेखर आज़ाद के साथ मिलकर हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन दल की स्थापना की। दल की ओर से उत्तर भारत के कई स्थानों पर बम बनाने के कारख़ाने खोले गए।

अंग्रेज़ सरकार की ओर से 1928 ई. में साईमन कमीशन को भारत भेजा गया जिसका देश में हर जगह विरोध किया गया। 1 अक्टूबर, 1928 को लाहौर में कमीशन के बायकाट का नेतृत्व करते हुए पंजाब केसरी लाला लाजपत राय पर पुलिस ने लाठियों से प्रहार किए जिसके फलस्वरूप उनका 17 नवम्बर, 1928 को देहांत हो गया। भगत सिंह और उनके साथियों ने इसका बदला लेने के लिए सम्बंधित अंग्रेज़ अधिकारी सांडर्स की हत्या कर दी। भगत सिंह भेष बदलकर शहीद भगवतीचरण की पत्नी दुर्गा देवी और उनके शिशु की सहायता से बचकर कलकत्ता चले गए।

सरस्वती साहित्य संस्थान

295, जागृति एंक्लेव, दिल्ली-92 ☎ 22152435, 65909389

॥ ओ३म् ॥

क्रांति के अग्रदूत

लेखक :
आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'

सरस्वती साहित्य संस्थान
295, जागृति एन्क्लेव, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष : 22152435, 65909389

क्रांति के अग्रदूत

लेखक : आचार्य भगवान देव 'चैतन्य'

प्रकाशक : **मेहता रवीन्द्र आर्य,** *अध्यक्ष*
सरस्वती साहित्य संस्थान, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष : 22152435, 65909389

© सर्वाधिकार सुरक्षित

संस्करण : भाद्रपद 3 वि २०६४ 14 सितम्बर 2007 ई०

मूल्य : २५ रुपये – **(Rs. 25)**

श्री रवीन्द्र कुमार मेहता द्वारा संजय प्रिन्टर्स, दिल्ली से मुद्रित

सत्यमेव जयते

शीला दीक्षित
मुख्यमंत्री

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार
दिल्ली सचिवालय आई.पी. एस्टेट,
नई दिल्ली-110002

अ.शा. पत्र संख्या : OSDCM1/397
दिनांक : 04.10.2007

भारतवर्ष में स्वतंत्रता संग्राम की 150वीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर आचार्य भगवान देव 'चैतन्य' द्वारा लिखित पुस्तक **"क्रांति के अग्रदूत"** का अवलोकन किया। आज़ादी की लड़ाई में बहुत से नौजवानों ने अपनी जवानियां न्यौछावर कीं, आज़ादी के इन दिवानों में अनेकों नाम आते हैं। इन क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों की बड़ी क्रूर यातनाएं भी सहीं। उन शहीदों की कुर्बानियां आख़िरकार रंग लाईं, आज हम स्वतंत्र भारत में सुख-चैन की सांस ले रहे हैं। जब तक हम उन शहीदों को याद नहीं करें तब तक हमारा राष्ट्र महान कहलाने का हकदार नहीं है। आज़ादी के दिवानों ने विदेशों में जाकर जंगे-आज़ादी की अलख जगाई। लन्दन में जाकर इण्डिया हाऊस की स्थापना कर अंग्रेज़ों से उनके अपने देश में टक्कर ली। आज़ाद हिन्द फौज़ की स्थापना की गई। शहीदों ने मातृ भूमि की मिट्टी को चूमते-चूमते फांसी के फन्दे को हंसते-हंसते गले में डाला। उन शहीदों का स्मरण कर इनके तप, त्याग, बलिदान से निरन्तर प्रेरणा लें और अपने देश को उन्नत व सशक्त बनायें।

मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि हमारी भावी पीढ़ी इनकी कुर्बानियों से कुछ सीख लेकर अपनी भारत भूमि की रक्षा के प्रति जागरूक रहेगी। इस पुस्तक के लेखक आचार्य भगवान देव 'चैतन्य' तथा प्रकाशक मेहता रवीन्द्र आर्य को बधाई।

शीला दीक्षित

(शीला दीक्षित)

दो शब्द

भारतवर्ष को स्वतंत्र कराने के लिए न जाने कितने ही वीरों ने अनेकों कष्ट सहे हैं मगर आज जैसे हम उनके उन उपकारों को मानों भूल से गए हैं। यदि भूले न होते तो जिस स्वतंत्र भारत की कल्पना उन्होंने की थी उसके निर्माण में इतना प्रमाद न होता। उन्होंने कभी इस बात की कल्पना तक नहीं की होगी कि स्वतंत्र भारत का स्वरूप इतना विकृत और आत्महन्ता स्थिति तक पहुंच जाएगा। इस आर्यावर्त्त की अपनी एक गरिमा रही है मगर आज वह गरिमा कहां लुप्त हो गई है? आज हम गौरव करें भी तो किस बात पर करें? स्वतंत्र भारत की जो तस्वीर हमारे अमर क्रांतिकारियों के मस्तिष्क में थी उससे हम आज भी कोसों दूर हैं बल्कि यदि यूं कहें कि हम इस मामले में और भी अधिक पिछड़ गए हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आज स्वतंत्र भारत अनेक प्रकार की समस्याओं का पुंज बन गया है। इस बात से मना नहीं किया जा सकता है कि भौतिक रूप से भारत पहले से सम्पन्न हुआ है मगर यदि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को ही संभाल नहीं पाए तो यह भौतिक उपलब्धियां नगन्य ही हैं। आज हम राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्वर्ण जयन्ती तो मना रहे हैं मगर आज भी एक सोची समझी चाल के अन्तर्गत अंग्रेज़ी को बढ़ावा दिया जा रहा है। अंग्रेज़ी के इस प्रचलन से सबसे बड़ी हानि यह हो रही है कि हमारी आने वाली संतति अपने संस्कारों से पूर्णतया विमुख होकर काले अंग्रेज़ बन रही है। आज भी इस स्वतंत्र भारत में गोहत्या होती है और गौ का मांस खाने वाले लोग व राजनेता हैं। शराब का बोलबाला दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। न्यायपालिका पर पूरी तरह से गुण्डाइज्म हावी है। निर्दोष व्यक्ति सज़ा पा रहे हैं और दोषी अपने प्रभाव के कारण बाइज्ज़त बरी हो जाते हैं। यहां तक की बड़े-बड़े नेता हत्या और ग़बन के केसों में फंसकर बाद में निर्दोष करार दे दिए जाते हैं। वर्ण-व्यवस्था ठीक ढंग से लागू न होने के कारण समूची अर्थ-व्यवस्था चरमरा गई है। ग़रीब और अधिक ग़रीब तथा अमीर और अधिक अमीर बनते चले जा रहे हैं।

सम्प्रदायवाद और जातिवाद नेताओं के हथियार बन गए हैं।

कहां तो इस प्रकार की जातियता और साम्प्रदायिकता को निर्मूल किया जाना चाहिए था और कहां प्रत्येक नेता और राजनैतिक पार्टी इसी का सहारा लेकर मानवता का खून बहा रही है। आरक्षण के नाम पर पिछड़े लोगों को हमेशा के लिए पंगु बनाए रखने की चालें चलकर सभी अपना उल्लू सीधा करने में मग्न हैं। इसी प्रकार क्षेत्रवाद को भी हवा दी जा रही है। जिन मूलभूत कमज़ोरियों के कारण हम इतने वर्षों तक परतंत्र रहे आज उन्हीं बुराईयों को प्रश्रय दिया जा रहा है। आपसी फूट के बीज हर जगह बोए जा रहे हैं ताकि राजनेता या मठाधीश अपना-अपना उल्लू सीधा कर सकें। धर्म, संस्कृति, देश प्रेम और चारित्रिक शिक्षा को जैसे देश निकाला दे दिया गया है। आज के युवकों को अपने महापुरुषों और स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति श्रद्धा नहीं रही हैं। जब तक उन्हें स्वतंत्रता के महत्व का पता नहीं चलेगा तब तक वे इस स्वतंत्रता की रक्षा कर पाने में भी सक्षम नहीं हो सकेंगे। उन्हें मालूम ही नहीं कि स्वतंत्रता हमें कितने बलिदानों के बाद प्राप्त हुई है। क्योंकि इस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा उन्हें दी ही नहीं जा रही है। धर्म के नाम पर आज पहले से भी अधिक लूट मची हुई है। सब जगह अराजकता और स्वार्थ का बोलबाला है। चरित्र नाम की वस्तु का पूर्णतया लोप हो गया है। आज देश और मानवता के साथ धोखा करने वाले को हेय नज़रों से नहीं देखा जाता। बल्कि इसे भी एक शान समझा जाता है। यह भी एक बड़प्पन की निशानी बन गई है। यही कारण है कि आज हर कोई इस देश को लूटने में लगा हुआ है। एक मजदूर से लेकर प्रधानमंत्री तक धोखाधड़ी में संलिप्त पाए गए हैं। यही सब कारण है जिनके कारण आज भी हमारा देश उन्नति की राह पर नहीं चल रहा है। जब तक उपरोक्त बातों का निराकरण नहीं हो जाता है तब तक हम व्यक्ति, समाज और देश की सुख शान्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। इस पुस्तक में हमने कुछ ऐसी ही विभूतियों का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है....। श्री मेहता रवीन्द्र 'आर्य' जी प्रकाशन जगत् में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, इसके लिए हम उनका आभार व्यक्त करते हुए उनके उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायु की कामना करते हैं।

आचार्य भगवान देव 'चेतन्य'

दुर्गा भाभी का प्रेरक जीवन

देश की स्वाधीनता के बाद दुर्गा भाभी ने अपना जीवन समाज सेवा, शिक्षा सेवा और क्रांतिकारी परिवारों के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। वे अपने जीवन के अन्तिम दिनों में देश में बढ़ रहे जातिवाद, साम्प्रदायवाद तथा भ्रष्टाचार से बहुत व्यथित थीं। एक साक्षात्कार में उन्होंने अपनी वेदना को प्रकट करते हुए कहा था कि क्रांतिकारियों ने जिस स्वतंत्र भारत की कल्पना को सामने रखकर अपने प्राण उत्सर्ग किए थे,आज भी वैसा भारत नहीं बन पाया है। अपने आंसू पोंछते हुए उन्होंने आगे कहा था कि तप और त्याग का युग समाप्त हो गया है, लूट-खसोट का बोलबाला है, किस भारत और स्वराज्य की कल्पना की थी हमने और कैसा समाज आज हमारे सामने है..... क्रांतिकारी तो अब पक्के आम की तरह गिर रहे हैं, एक समय आएगा जब लोग उनके बलिदान को भूल जाएंगे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था 'क्रांति क्षण-भंगुर है, क्रांतिकारी समय-समय पर आवश्यकतानुसार पैदा होते हैं और अपनी आहुति देकर चले जाते हैं। क्रांति, सामाजिक हो अथवा राजनैतिक, जिस सुख और सौंदर्य को जन्म देती है उसकी प्रसव वेदना क्रांतिकारी ही सहता है। आजीवन इस वेदना को सहने वाली इस वीरांगना का 14 अक्टूबर, 1999 को रात्रि नौ बजे 92 वर्ष की आयु में ग़ाज़ियाबाद में देहान्त हो गया। वे यहां लगभग 20 वर्षों से राजनगर के सेक्टर 2 में अपने पुत्र शचीन्द्र वोहरा के यहां रह रही थीं। मृत्यु के समय उनका पुत्र, पुत्रवधु तथा एक पौत्र और दो पोतियां मौजूद थीं। दुर्गाभाभी आज भले ही हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं मगर उनका बलिदान, तप और त्याग देशवासियों को सदा-सर्वदा प्रेरणा देता रहेगा.....।

सरस्वती साहित्य संस्थान

295 जागृति एन्क्लेव, विकास मार्ग, दिल्ली-92 ☎22152435

सादर समर्पण

परमात्मा के अतिरिक्त और कौन जान सकता है कि स्वतंत्रता की बलिवेदी पर कितने वीरों तथा वीरांगनाओं ने अपने, तन, मन, धन तथा सर्वस्व की आहुति प्रदान करके भारत मां को बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए अपना जीवन तक न्योछावर कर दिया। वे सब समान रूप से हमारी श्रद्धा के पात्र हैं तथा उन्हीं समस्त जानी-अनजानी महान आत्माओं को श्रद्धा के साथ नमन करते हुए यह तुच्छ सा प्रयास समर्पित है। उनमें से कुछ के नामों का उल्लेख करना चाहता हूं जिन्हें पुस्तक के कलेवर को देखते हुए स्थान नहीं दिया जा सकता है। हम शहीद राजगुरू, सुखदेव, ठाकुर, रोशन सिंह, राजेन्द्र लाहरी, भगवती चरण बोहरा, खुदीराम बोस, वटुकेश्वर दत्त, कन्हाई लाल दत्त, भाई बाल मुकन्द, वीर हरिकिशन लाल, चन्द फलक, सरदार किशन सिंह, अजीत सिंह, गेन्दालाल दीक्षित, श्रीराम राजू, वि.ग. पिंगले, यतीन्द्रनाथ, मादाम विकाजी कामा, शचीन्द्रनाथ सान्याल, सोहन लाल पाठक, चिदम्बरम् पिल्ले, बाघा यतीन, किशन सिंह गड़गज्ज, अनन्त हरि मित्र, सूर्यसेन स्वामी, कृष्णानन्द तथा मणीन्द्र नाथ बैनर्जी आदि। अन्य समस्त भारत मां के वीर सूपतों को भी अत्यंत श्रद्धा तथा हृदय की गहराईयों से नमन करते हैं। दासता के कारण भारत की जघन्य शोचनीय (सांस्कृतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक तथा अन्य अनेक विपदाएं) हालत को देखकर महर्षि दयानन्द सरस्वती का स्वतंत्रता के अग्रदूत बनकर जो योगदान मिला वह भुलाया नहीं जा सकता।)

आचार्य भगवान देव 'चेतन्य'
'वैदिक वशिष्ठ आश्रम'
महादेव, सुन्दरनगर, मण्डी (हि.प्र.)
दूरभाष : 01907-263092, 09418053092

अनुक्रमणिका

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती 8
2. बाल गंगाधर तिलक 22
3. श्याम जी कृष्ण वर्मा 30
4. नेता जी सुभाषचन्द्र बोस 36
5. लाला लाजपत राय 47
6. अरविन्द घोष 55
7. भाई परमानन्द 63
8. वीर सावरकर 73
9. चन्द्रशेखर आज़ाद 81
10. सरदार भगतसिंह 89
11. पं. रामप्रसाद बिस्मिल 99
12. अशफ़ाक उल्ला ख़ां 107
13. मदन लाल ढींगरा 115
14. दुर्गा भाभी 125
15. लाला हरदयाल 131
16. उधमसिंह 138
17. करतार सिंह सराभा 145

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जन्म 12 फरवरी, सन् 1825 को काठियावाड़ के मोरवी राज्यान्तर्गत टंकारा नामक स्थान में सम्पन्न, उच्चकुलीन आदिच्य ब्राह्मण परिवार में हुआ। इनके पिता जी का नाम कर्षन जी तिवारी तथा माता का नाम मुंगीबाई था। इनका बचपन का नाम मूलशंकर था। ये बचपन से ही अत्यधिक प्रतिभामान तथा प्रत्युत्पन्नमति थे। आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया तथा चौदह वर्ष की आयु में ही इन्हें यजुर्वेद संहिता कंठस्थ हो गई थी। इनके पिता जी कट्टर शैवभक्त थे अतः मूलशंकर अभी केवल चौदह वर्ष के थे तभी उन्होंने मूलशंकर से शिवरात्रि का उपवास रखवाया तथा अपने साथ जागरण कराने के लिए पास के शिव मन्दिर से शिवरात्रि का उपवास रखवाया तथा अपने साथ जागरण कराने के लिए उसी शिव मंदिर में ले गए। कर्षन जी सहित सभी अन्य श्रद्धालु धीरे-धीरे निद्रा की गोदी में चले गए मगर मूलशंकर अत्यधिक आस्थावान होकर निरन्तर बैठे रहे। देर रात गए अचानक क्या देखते हैं कि एक चूहा शिव की पिण्डी पर न केवल उच्छल-कूद कर रहा है बल्कि चढ़ाए गए प्रसाद को भी खा रहा है। प्रतिभाशाली बालक ने जब यह दृश्य देखा तो उसकी आस्था डगमगा गई। मन में प्रश्न उठा कि जिस शंकर के बारे में मैंने सुन रखा है यह वह शिव कदापि नहीं हो सकता है क्योंकि इस पर तो एक चूहा भी न केवल उच्छल कूद कर रहा है बल्कि चढ़ाए गए नैवैद्य का भी भक्षण कर रहा है। पिता जी को उठा कर शंका का समाधान करने को कहा मगर सन्तुष्ट न होकर वापस घर आ गए तथा उपवास तोड़ दिया।

इस घटना से उनके हृदय में सच्चे शिव को प्राप्त करने की लालसा ने घर कर लिया। इधर सम्वत् 1896 में इनकी बहिन और सम्वत् 1899 में चाचा जी की मृत्यु हो गई। मूलशंकर मृत्यु का दृश्य देखकर बहुत आश्चर्य चकित हुआ तथा उसके हृदय में तीव्र वैराग्य के भाव पैदा हो गए। शिव मन्दिर की घटना से उसने सच्चे शिव को प्राप्त करने की भावना बनाई थी और मृत्यु को देखकर उसने मृत्युंजयी बनने की भी प्रतिज्ञा कर ली। वह लगातार किसी गहरे चिन्तन में रहने लगा। परिवार वालों ने जब उसकी ऐसी स्थिति देखी तो जल्दी से उसका विवाह कर देने की ठानी। इधर मूलशंकर को ज्यों ही इस बात की भनक पड़ी तो उसने सम्वत् 1900 में 21 वर्ष की आयु में गृह त्याग कर दिया और सायले ग्राम में एक ब्रह्मचारी से ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा लेकर शुद्ध चैतन्य बन गए। योगियों की तलाश में वे सिद्धपुर नामक स्थान पर पहुंचे और नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में अपना डेरा डाला मगर पिता जी ने आकर धर दबोचा। उन्होंने उस शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी के काषाय वस्त्र फाड़ डाले तथा कमण्डलु आदि तोड़ दिए। वे शुद्ध चैतन्य को अपने ठहरने के स्थान पर ले आए तथा कहीं यह पुनः भाग न जाए इस आशय से रात्रि को दो सिपाही पहरे पर नियुक्त कर दिए। दृढ़ संकल्पी शुद्ध चैतन्य अवसर की तलाश में था तथा उसने ज्यों ही सिपाहियों को ऊंघते हुए पाया, दबे पांव वहां से भाग निकले। उन्होंने कुछ दिन बड़ौदा में ठहरकर वेदान्त के ग्रन्थों का स्वाध्याय किया तथा उसके बाद किसी अच्छे योगी की तलाश में चाणोद कर्णालि नामक स्थान पर पहुंचे। वहां उनका मिलना एक वीतराग संन्यासी स्वामी पूर्णानन्द जी से हुआ तथा उनसे संन्यास की दीक्षा लेकर ये स्वामी दयानन्द सरस्वती बन गए। उसके बाद वे निरन्तर भ्रमण करते रहे।

अनेक ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहे तथा अनेक योगियों से मिलकर स्वयं भी योगाभ्यास करते रहे। कुंभ के पर्व पर ये हरिद्वार पहुंचे तथा वहां धर्म के नाम पर होते हुए अनेक प्रकार के पाखण्ड और आडम्बर को देखकर इन्हें बहुत ग्लानि हुई। फिर उन्होंने हरिद्वार में ही अपना सर्वस्व त्याग कर एक जगह पाखण्ड-खंडनी पताका फहराई। तद्पश्चात् एक कोपीन (लंगोट) पहन कर वहां कुछ समय ठहरे और फिर उन्होंने चण्डी पर्वत के वनखण्ड में योंगाभ्यास किया। फिर अलखनन्दा तथा गढ़मुक्तेश्वर आदि स्थानों में योगाभ्यास तथा विद्वान् योगियों की तलाश करते रहे। तद्उपरान्त इन्होंने ऋषिकेश, केदारनाथ, उत्तरकाशी, तुगंनाथ, जमुनोत्री आदि अनेक तीर्थों तथा कानुपर एवं फर्रूखाबाद आदि नगरों का भ्रमण किया। वे निरन्तर किसी ऐसे गुरू की तलाश में थे जो उन्हें सच्चा ज्ञान प्राप्त करा सके। इसी भ्रमण के दौरान उन्हें पता चला कि मथुरा में दण्डी स्वामी विरजानन्द नाम के नेत्रहीन ब्राह्मण रहते हैं जो वास्तव में उनका सही मार्ग दर्शन कर सकेंगे। महर्षि दयानन्द जी कार्तिक सूदी 2, सम्वत् 1917 को मथुरा में गुरू विरजानन्द जी की कुटिया में जा पहुंचे। कुटिया का दरवाज़ा खटखटाया तो अन्दर से स्वामी विरजानन्द ने आवाज़ दी – "कौन"। इस पर स्वामी दयानन्द ने उत्तर दिया "यही तो मैं जानने आया हूं।" इस पर गुरू विरजानन्द ने उन्हें सच्चा शिष्य समझकर अन्दर आने को कहा। गुरू जी ने उनकी पहली शिक्षा के बारे में पूछा, बताने पर स्वामी जी ने दयानन्द को वह पहले सभी अनार्ष ग्रन्थों को यमुना में बहा आने को कहा। फिर यहां उन्होंने लगभग अढ़ाई-तीन वर्ष रहकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र आदि अनेक आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन किया। गुरू विरजानन्द जी के सान्निध्य में महर्षि को आर्ष व अनार्ष ग्रन्थों में भेद करने की प्रतिभा प्राप्त हुई।

मनुष्य कृत समस्त ग्रन्थ अनार्ष तथा परमात्मा द्वारा प्रदत्त सार्वभौमिक तथा निरभ्रान्त वेद ज्ञान आर्ष ग्रन्थों की कोटि में आता है। विद्याग्रहण करने के बाद अपने गुरू के यहां से जब महर्षि जी विदा होने लगे तो गुरू जी की इच्छा का पालन करते हुए अपना समूचा जीवन आर्ष ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया।

कार्यक्षेत्र में उतरते ही इन्होंने अपने गुरू से प्राप्त आर्ष ज्ञान के प्रचार-प्रसार में अपने आप को आहुत कर दिया। स्थान-स्थान पर जाकर प्रवचन दिए, शास्त्रार्थ किए। कुछ विद्वानों के आग्रह पर उन्होंने संस्कृत भाषा की बजाय हिन्दी भाषा में प्रवचन तथा हिन्दी भाषा में ही लेखन कार्य आरम्भ कर दिया। सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि गोकरूणानिधि, आर्याभिविनय, पंचमहायज्ञविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेक अद्‌भुत ग्रन्थों का लेखन किया। लोगों के तीव्र आग्रह पर इन्होंने वैदिक मान्यताओं का अनवरत प्रचार-प्रसार करने के लिए ही 7 अप्रैल, 1875 को मुम्बई नगर में 'आर्यसमाज' नामक संस्था का गठन किया। आर्यसमाज के माध्यम से संसार में अद्‌भुत कार्य सम्पन्न हुए। महर्षि जी ने धर्म के नाम पर होने वाले समस्त पाखण्डों और आडम्बरों का प्रबल विरोध करके सही मानव धर्म स्थापना की दिशा में सार्थक कार्य किया। अध्ययन-अध्यापन, वेद वेदाङ्गों को पढ़ने सुनने से वंचित तथा पैरों की जूती समझी जाने वाली नारी को पुनः पढ़ने का अधिकार प्रदान किया, विधवा उद्धार किया तथा उसे सम्माननीय और पूज्य कहा। छूआछूत आदि अनेक कुरीतियों को जड़मूल से उखाड़ने के लिए रचनात्मक कार्य किया तथा पराधीनता की बेड़ियों को काट फैंकने के लिए साहस के साथ मैदान में आ गए। महर्षि दयानन्द जी जन्मजात क्रांतिकारी थे। अपनी संस्कृति के प्रति सम्मान तथा

राष्ट्र-प्रेम इनमें मानों कूट-कूट कर भरा हुआ था।

गुरू विरजानन्द तथा उनके शिष्य महर्षि दयानन्द जी ने सन् 1857 में हुए प्रथम स्वाधीनता संग्राम में अपनी अहम भूमिका निभाई थी इस बात के आज पर्याप्त प्रमाण मिल चुके हैं। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, स्वामी वेदानन्द सरस्वती, पृथ्वी सिंह मेहता विद्यालंकार, मीरमुस्ताक मिरासी, वासुदेव वर्मा, दीनबन्धु वेद शास्त्री, इन्द्र विद्यावाचस्पति डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, सत्यदेव विद्यालंकार तथा क्षितिश वेदालंकार आदि लेखकों एवं इतिहासकारों ने इस तथ्य की अनेक स्थानों पर पुष्टि की है। सर्वखाप पंचायत शोरम जिला मुजफ्फरनगर के महामंत्री चौ. कबूल सिंह जी ने भी ऐसे लिखित प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। दैनिक हिन्दुस्तान (12.8-69) तथा 'हमारा राजस्थान' पत्रिका के अंकों में विस्तार से इस तथ्य को देखा जा सकता है। धर्मयुग (9 से 15 मई 1976) में प्रकाशित लेख के अनुसार महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का नाना साहब, झांसी की रानी तथा तांत्या टोपे आदि से सीधा सम्पर्क था। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की असफलता पर नाना जी दुखी होकर आत्महत्या करने लगे थे मगर महर्षि जी ने उनको पुनः संगठित होकर कार्य करने की प्रेरणा दी तथा उन्हें संन्यास की दीक्षा देकर दिव्यानन्द नाम दिया। महर्षि दयानन्द जी भी इस सफलता से निराश नहीं हुए बल्कि इस विफलता के कारणों का उन्होंने बहुत गहराई से आकलन किया और जात-पात, पाखण्डवाद तथा अलगाववाद को दूर करने तथा जनचेतना पैदा करने के लिए कार्यक्षेत्र में उतरे। उन्होंने जनता में भातृभाव, देशप्रेम व अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा के भाव गहराई से स्थापित करने आरंभ किए। मालवीय जी के अनुसार उन्होंने भारतीयों को पुनः रीढ़ की हड्डी प्रदान करके उन्हें साहस के साथ खड़ा होना सिखाया। जिस समय हमें

पद्दलित तथा हमारी संस्कृति को हीन बताया जा रहा था उस समय उन्होंने अपने गौरव के बारे में सत्यार्थप्रकाश में लिखा—'यह आर्यावर्त्त ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है इसलए इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है, क्योंकि यही स्वर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। पारसमणि पत्थर सुना जाता है, यह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूपी दरिद्र-विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते थे। सृष्टि के आरंभ से लेके पांच सहस्त्र वर्षों से पूर्व पर्यन्त आर्यों का सार्वभौमिक चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राज्य रहते थे।' यही नहीं उन्होंने डंके की चोट पर कहा कि— 'यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वे सब आर्यावर्त्त देश ही से प्रचारित हुए हैं। देखो कि जैकालियट नाम का एक फ्रांसीसी अपनी पुस्तक 'ला बाइबिल दां ला इण्डे' में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाईयों का भण्डार आर्यावर्त्त देश है और सब विद्या और मत इसी देश से फैले हैं....और जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह आर्यावर्त्त देश से मिश्र वालों ने उनसे यूनानी, उनसे रोम और उनसे यूरोप देश में और उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है।

उनके देश प्रेम की भावना उनके ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर प्रवाहित हुई है। अपने देश और संस्कृति के प्रति हीन भावना होना उन्हें बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं था। ब्रह्मसमाजियों के बारे में वे लिखते है—'इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिए हैं। खान-पान विवाहादि के नियम भी बदल दिए हैं। अपने देश की प्रशंसा व पूर्वजों की बड़ाई करना तो दूर रहा, उसके स्थान में पेटभर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेज़ों की प्रशंसा भरपेट

करते हैं, ब्रह्मादि ऋषियों का नाम भी नहीं लेते। प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अंग्रेजों के उन्नति कभी नहीं हुई।....भला! जब आर्यावर्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न-जल खाया-पीया, अब भी खाते-पीते हैं, तब अपने माता-पिता पितामहादि के मार्ग को छोड़के दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्रह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान प्रकाशित करना, इंगलिश पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का बुद्धिकारक काम क्यों कर हो सकता है?' परतंत्रता की वेदना तथा अपने राज्य की अनिवार्यता के बारे में वे लिखते हैं—'अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद और परस्पर के विरोध से अन्य देशों में तो राज्य करने की कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यवर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम है।'

अंग्रेज़ों ने भारतवर्ष पर राज करने के लिए जहां एक ओर हमारी संस्कृति को हीन बताने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया कि आर्य लोग भी इस भूमि के मूल निवासी नहीं हैं बल्कि उन्होंने यहां के आदिवासियों पर आक्रमण करके अपना राज्य स्थापित कर लिया। आर्यों से भिन्न इन लोगों को उन्होंने दस्यु कहा है। ईसाइयों की यह भी एक सोची-समझी चाल थी जिसका निराकरण महर्षि दयानन्द ने बड़े ही सुन्दर ढंग से अपने ग्रन्थ आर्याभिविनय में (1-14) इस प्रकार किया—'हे सबको यथायोग्य जानने वाले परमेश्वर! आप विद्या, धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त

आर्यों को जानों और जो नास्तिक, डाकू, चोर, लम्पट, विश्वासघाती, मूर्ख, हिंसादि दोषयुक्त, उत्तम कर्मों में विघ्नकारक, स्वार्थी, वेद विद्याविरोधी, अनार्य मनुष्य सर्वोपकारक यज्ञ के ध्वंसक हैं, उन सब दुष्टों को आप जड़मूल से नष्ट कर दीजिए और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि, धर्मानुष्ठान-व्रतरहित, वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों को शीघ्र दण्डित करो जिससे वे शिक्षित होकर शिष्ट हों अथवा हमारे नियंत्रण में रहें। आप मनुष्यों को शक्ति देने वाले हैं और शुभ कर्मों में प्रेरित करने वाले हैं। आप हमारे दुष्कर्मों के निरोधक हो। हम भी आपकी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्मों की कामना करें और आप उन्हें पूरी करें।' इस प्रकार महर्षि जी ने आर्य और दस्यु को भिन्न-भिन्न जातियां न मानकर गुण-कर्म व स्वभाव के आधार पर विवेचित किया है। महर्षि जी प्रथम ऐसे क्रान्तदर्शी थे जिन्होंने अंग्रेज़ों की इस कूटनीति को समझा तथा इसका निराकरण भी किया। सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की– **'किसी संस्कृत ग्रन्थ में या इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आए और यहां के जंगलियों से लड़कर, जय पाके उन्हें निकाल के इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख कैसे माननीय हो सकता है? आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से आकर सीधे इसी देश में आकर बसे थे। इससे पूर्व इस देश का कोई नाम भी नहीं था और न आर्यों से पहले इस देश में कोई बसते थे।'**

स्वतंत्रता संग्राम में विदेशी वस्तुओं के प्रयोग के विरूद्ध जो आन्दोलन चला उसकी भी महर्षि जी ने न केवल पृष्ठभूमि तैयार की बल्कि उसके कार्यान्वयन को भी प्रश्रय दिया था। उन्होंने बहुत पहले ही भारतीयों को सचेत करते हुए कहा था–**'देखो! (अंग्रेज़) अपने देश में बने हुए जूतों को कार्यालय**

ऑफ़िस और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूतों को नहीं। इतने से ही समझ लेओ कि अंग्रेज़ अपने देश के जूतों का भी जितना मान करते हैं, उतना अन्य देशस्थ मनुष्य का भी नहीं करते।' इस क्रम में वे अन्यत्र कहते हैं। 'देखो! 'कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आए यूरोपियनों को हो गए और आज तक ये लोग वैसे ही मोटे कपड़े आदि पहनते हैं, जैसे कि स्वदेश में पहनते थे, परन्तु उन्होंने अपना चलन नहीं छोड़ा। तुम में से बहुत से लोगों ने उनकी नकल कर ली। अनुकरण करना बुद्धिमानों का काम नहीं। इससे तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान ठहरते हैं.....' महर्षि जी ने स्वदेशी का केवल नारा ही नहीं दिया बल्कि भारतीयों को स्वयं देश-विदेश में अपनी वस्तुओं का व्यापार करने की प्रेरणा भी दी। क्योंकि उनका मानना था– 'जब परदेशी हमारे देश में व्यापार करें तो दारिद्रय और दुःख के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।' उनकी इन भावनाओं को आर्यसमाज ने कार्यान्वित करके स्वदेशी की लहर को आगे बढ़ाया। लाहौर से प्रकाशित होने वाले स्टेट्समैन (14 अगस्त, 1879) में समाचार प्रकाशित हुआ। 'भारत की वर्तमान अवस्था तेजी से बढ़ती हुई दरिद्रता की है। देश की इस अवस्था में अपने उद्योग धन्धों की पुनः बहाली का प्रश्न जितना महत्वपूर्ण और रोचक है, उतना कोई अन्य सामाजिक प्रश्न नहीं है, अतः विद्वान मनीषी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित लाहौर आर्यसमाज के सदस्यों के इस कदम का सन्तोष के साथ अभिनन्दन उन सब लोगों को करना चाहिए जिनके हृदय में देश का हित है। आर्यसमाज के भवन के परिसर में हुई एक बैठक में उन्होंने अंग्रेज़ी कपड़ों के प्रयोग से विरत होने का निश्चय किया है। आगे से वे केवल भारत में बने कपड़ों का आग्रह रखेंगे.....भारतीय बाज़ार में मांचेस्टर के प्रभाव का जवाब देने का यही एक उपाय है।'

महर्षि दयानन्द जी ने परोक्ष तथा अपरोक्ष रूप से उस समय के किंकर्त्तव्यविमूढ़ भारतीयों में एक ओर जहां प्रत्येक क्षेत्र में जागरूक होने की प्ररेणा दी वहीं दूसरी ओर उनके प्रत्येक कार्य के पीछे अंग्रेज़ी राज्य को ध्वस्त करने का आवाहन भी नीहित था। गोहत्या बन्दी के लिए उन्होंने उस समय कठोर कदम उठाए। गोकरूणानिधि नामक ग्रन्थ की रचना करके गौ की महत्ता को प्रदर्शित किया तथा इंग्लैंड की महारानी को गोहत्या बन्द कराने के लिए हस्ताक्षर भिजवाए। उनके प्रत्येक शब्द में अंग्रेजों के प्रति घृणा के भाव प्रकट होते थे। उन्होंने कहा– **'भारत की दुर्दशा गो-हत्यारे विदेशी शासकों के कारण हो रही है....जब आर्यों का राज्य था तब महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे। तब आर्यावर्त्त और अन्य देशों में मनुष्यादि प्राणी बड़े आनन्द में बरतते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आकर गौ आदि पशुओं को मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की वृद्धि होती जा रही है।'** अजमेर में कर्नल ब्रुक्स से उन्होंने साफ शब्दों में कहा था–**'यदि गोहत्या बन्द नहीं होगी तो 1857 को फिर दुहराया जा सकता है।'** इसी कर्नल ने जब एक बार महर्षि जी से कहा कि हमारे राज्य में आप खण्डन-मण्डन आदि का कार्य नीडरतापूर्वक कर रहे हैं इसलिए परमात्मा से हमारे राज्य के अभ्युदय के लिए प्रार्थना किया करें तो उन्होंने निडरतापूर्वक उत्तर दिया था– **'कि मैं तो परमात्मा से रात दिन यही प्रार्थना किया करता हूं कि अंग्रेज़ी राज्य का शीघ्र विनाश हो।'** महर्षि के हृदय को देश की परतंत्रता सदा उद्वैलित करती रहती थी तथा उससे मुक्ति पाने के लिए वे सदा प्रयत्नशील रहे। उनके द्वारा इस प्रकार के उद्गार देखे जा सकते हैं....**'अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हो तथा हम लोग पराधीन कभी न रहें'**, यह

एक ऐतिहासिक तथ्य है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ही स्वतंत्रता के प्रथम प्रणेता थे। अनेक महापुरुषों ने भी इस बात की पुष्टि की है।

लोकमान्य तिलक जी के शब्दों में–'ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोए हुए भारत को जागृत किया। स्वराज्य के वे सर्व-प्रथम सन्देश वाहक थे।' सरदार पटेल जी ने कहा–'मेरी दृष्टि में वे सच्चे राजनीतिज्ञ थे। चालीस वर्षों से कांग्रेस का जो कार्यक्रम रहा है वे सब कार्य साठ वर्ष पूर्व ऋषि दयानन्द ने देश के लिए रखा था। सारे देश में एक भाषा, खादी, दलितोद्धार, स्वराज्य की घोषणा आदि सब दयानन्द ने देश को दिया।' डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा था–'जो कार्य बाद में कांग्रेस और गांधी जी ने शुरू किए, उन्हें ऋषि दयानन्द 50 वर्ष पूर्व आरंभ कर चुके थे।' इसीलिए लोकसभा के अध्यक्ष रहे आयंगर जी ने कहा था–'गांधी जी राष्ट्र के पिता थे तो महर्षि दयानन्द राष्ट्र के पितामह थे। वे हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों और स्वतंत्रता आन्दोलन के आद्य प्रवर्तक थे।' दादाभाई नौरोजी का कथन है–'मुझे स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से स्वराज्य की लड़ाई में बड़ी प्रेरणा मिलती है।' श्रीमती एनीबैसेन्ट ने कहा था– 'जब भारत माता की स्वतंत्रता के मन्दिर का निर्माण होगा तो उसमें सर्वोच्च स्थान नंगे फ़कीर महर्षि दयानन्द को दिया जाएगा।' सेठ गोविन्ददास ने कहा है–'स्वामी दयानन्द भारतीय सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक थे, उन्होंने सुप्त राष्ट्र में नवचेतना और नव जागरण का संचार किया। ऐसे महापुरुष का राष्ट्र चिर ऋणि है.....'। मोरारजी भाई के अनुसार– '.....उन्होंने समाज में राष्ट्रीय भावना जागृत की। धार्मिक, शैक्षणिक, सामाजिक और

सांस्कृतिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया।' प्रो. एन.जी. रंगा जी ने उन्हें क्रियात्मक आदर्शवादी कहते हुए– '....अजय, राष्ट्र निर्माता कहा। विट्ठल भाई पटेल ने उन्हें अपना राजनैतिक गुरू कहा है। लालबहादुर शास्त्री जी के अनुसार वे महान राष्ट्रनायक नेता और क्रांतिकारी महापुरुष थे। श्री काटजू कहते हैं–स्वामी दयानन्द जी ने सर्वप्रथम भारत की स्वतंत्रता का बीज बोया था। भारत के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में सर्वप्रथम उनका नाम लिया जायेगा।' टी.एल. वासवानी जी ने उन्हें '.....राष्ट्र निर्माण के लिए स्फूर्तिदायक बलदायक कहा है तथा उनके अनुसार दयानन्द जी उत्कट देशभक्त थे। अतः वे राष्ट्रभक्त समझकर उनकी वन्दना करते हैं। कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष डॉ. पट्टाभि सीतारमैया कहते हैं–'गांधी जी से पूर्व महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र के लिए महान कार्य किया। उन्होंने भारतीयों को स्वराज्य का मार्ग बताया। ऋषि एक पूर्ण पुरुष थे..... भारत के युग निर्माता थे। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस जी के अनुसार– 'महर्षि दयानन्द उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया। उनके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान के कारण ही यह संभव हुआ। क्रांतिकारी अरविन्द घोष जी महापुरुषों का पहाड़ की चोटियों से तुलना करते हुए कहते हैं कि 'महर्षि दयानन्द जी को सबसे ऊंची चोटी मानना होगा। श्याम जी कृष्ण वर्मा जी कहते हैं स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को मैं अपना मार्गदर्शक गुरू मानता हूं मैंने राष्ट्र जाति तथा समाज की जो भी सेवा की है, उसका श्रेय महर्षि जी को ही प्राप्त है... मुझे उनका शिष्य होने पर अभिमान है।' वीर सावरकर जी का कथन है–'.....महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा, हिन्दू जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने राष्ट्र की महान

सेवा की है और कर रहा है। आजादी की लड़ाई में आर्यसमाजियों का बड़ा हाथ रहा है।' लाला हरदयाल जी के अनुसार– 'ऋषि दयानन्द ने भारतवर्ष के वृक्ष का जल सिंचन किया था..... स्वामी जी ने युवकों के हृदय में त्याग, परोपकार और देशभक्ति की ज्योति जगाई थी। हिन्दू जाति की जो उन्नति दिखाई दे रही है, उसका श्रेय स्वामी जी को ही प्राप्त है। भारतवर्ष के इतिहास में उनका नाम पवित्र श्रेणी में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा।' देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी कहते हैं–'महर्षि वर्तमान अन्धकार युग के लिए 'वैदिक सूर्य' थे। मैं अपने को उनका अनुयायी कहलाने में गर्व अनुभव करता हूं।' लाला लाजपत राय जी के अनुसार '.....महर्षि दयानन्द मेरे गुरू हैं। संसार में मैंने सिर्फ़ उन्हें ही अपना गुरू माना है। आर्यसमाज मेरी माता है.....आर्यसमाज के मेरे ऊपर अनगिनत और असीम उपकार हैं। अगर मेरा बाल बाल भी आर्यसमाज पर न्यौछावर हो जाए तो भी मैं उन उपकारों से उऋण नहीं हो सकता।' इसी प्रकार रामप्रासद बिस्मिल तथा ठाकुर रोशन सिंह आदि अनेक क्रांतिकारियों ने भी महर्षि जी को अपना गुरू स्वीकार करने में गर्व अनुभव किया था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में महर्षि जी ने राजस्थान के राजाओं को प्रेरित तथा संगठित किया तथा उन्हें स्वतंत्रता के प्रति जागरूक किया। वहीं पर एक षडयंत्र के तहत उन्हें दूध में ज़हर मिलाकर दिया गया जिसके कारण 30 अक्टूबर, 1883 को दीवाली के दिन उनका देहावसान हो गया।

उनके निधन के बाद भी उनके द्वारा जलाई गई क्रांति की मशाल तीव्रगति से प्रज्वलित रही। अंग्रेजों की दृष्टि में प्रत्येक आर्यसमाजी क्रांतिकारी था। उनके अनुसार यदि आप प्रत्येक आर्यसमाजी की पीठ को खुर्च कर देखो तो क्रांतिकारी

दयानन्द दिखाई देगा। इसीलिए आर्यसमाज पर उनकी विशेष कुदृष्टि रहती थी। मिस्टर ब्लण्ट ने आर्यसमाज पर टिप्पणी करते हुए लिखा था—**'आर्यसमाज के सिद्धान्तों में देशभक्ति की प्रेरण है। आर्यसिद्धान्त और आर्यशिक्षा समान रूप से प्राचीन भारत के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायियों में राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना को जगाते हैं। इस शिक्षा के फलस्वरूप वे समझते हैं कि उनके देश का इतिहास पराभव की कहानी नहीं है। देशभक्ति और राजनीति पर्यायवाची नहीं है, किन्तु राष्ट्रीय कार्यों में रूचि या प्रवृत्ति राष्ट्रीय भावना का स्वाभाविक परिणाम है।'** यह एक वास्तविकता है कि यदि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में से महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज का नाम निकाल दें तो उसमें शेष कुछ भी नहीं बचेगा। महर्षि दयानन्द जी ने अपने जिस अनन्य शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा को विदेश भेजा उन्होंने इंग्लैंड में जाकर इण्डिया हाउस की स्थापना की तथा उनके नेतृत्व में वीर सावरकर, मदन लाल ढींगरा, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, मैडम कामा, सरदार सिंह राणा आदि ने और भारत में महर्षि से स्वराज्य की प्रेरणा लेने वाले लोकमान्य तिलक, स्वामी श्रद्धानन्द, गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद, भाई बालमुकुन्द पण्डित सोहन लाल पाठक, बाबा पृथ्वीसिंह आज़ाद, गेन्दालाल दीक्षित, ठाकुर रोशन सिंह, स्वामी सोमदेव, भगत सिंह, सरदार किशन सिंह, अजीत सिंह, कृष्ण सिंह बारहट, केसरी सिंह, ज़ोरावर सिंह, राजा महेन्द्रप्रताप आदि अन्य अनेक क्रांतिकारियों ने स्वयं को भारत मां की बेड़ियां काटने के लिए समर्पित कर दिया.....।

2. बालगंगाधर तिलक

यूं तो भारतवर्ष के इतिहास में अनेकों महापुरुषों ने जन्म लिया है मगर उनमें से कुछ एक समाज की समूची धारा को ही बदलने की प्रतिभा और साहस रखते थे। बालगंगाधर तिलक जी ऐसे ही अद्‌भुत महापुरुषों में से एक थे। इनका जन्म 23 जुलाई, 1856 को महाराष्ट्र के रत्नागिरि नामक स्थान के छोटे से गांव चिखलगांव में हुआ। इनके पिता गंगाधर रामचन्द्र तिलक साधारण से शिक्षक थे मगर वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। बचपन में ही पिता के संस्कारों का प्रभाव तिलक जी पर भी पड़ा। ये अपने बचपन से ही अद्‌भुत प्रतिभा के मालिक थे। ये अत्यधिक निडर तथा साहसिक प्रवृत्ति के थे। अन्याय और अत्याचार इन्हें बिल्कुल भी सहन नहीं होता था। यही कारण है कि एक बार जब इनके अध्यापक ने इन्हें अकारण दण्ड दिया तो इन्होंने उसका प्रतिरोध करते हुए कहा– 'जब मैंने अपराध ही नहीं किया तो मैं मार क्यों खाऊं। तिलक की इस निर्भीकता को देखकर अध्यापक न केवल दंग रह गया था बल्कि उन्हें इस बात का भी अहसास हो गया था कि यह बालक आगे चलकर अवश्य कोई महान कार्य करेगा। अपने दादा से जब ये नाना साहब, तांत्या टोपे तथा महारानी झांसी आदि क्रांतिवीरों की गाथाएं सुनते थे तो ये बहुत उत्तेजित हो जाया करते थे। मात्र चौदह वर्ष की आयु में ही आपका विवाह सत्यभामा जी के साथ कर दिया गया था। इन्होंने 1876 में बी.ए. तथा सन् 1879 में एल.एल.बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। कानून स्नातक होने के बाद इन्होंने अपनी प्रतिभा के चमत्कार दिखाना आरंभ किए। इन्होंने पूना के न्यू इंगलिश स्कूल, डक्कन एजूकेशन सोसायटी तथा फर्ग्यूसन कालेज की व्यवस्था अपने हाथों में लेकर शिक्षा के

क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किया। आगे चलकर इन्होंने ही कांग्रेस में कुछ जुझारूपन पैदा किया अन्यथा उनसे पूर्व स्वतंत्रता की मांग मानों एक औपचारिकता भर ही थी। उस मांग में अधिकार के स्थान पर गिड़गिडाहट और किसी याचक जैसी प्रवृत्ति लगती थी। इसके विपरीत उन्होंने अपने पत्र 'केसरी' में लिखा–'भारत में अंग्रेज़ी नौकरशाही से अनुनय विनय करके हम कुछ नहीं पा सकते। ऐसे प्रयास करते रहना तो पत्थर पर सिर टकराने के समान है।' इसलिए उन्होंने साफ शब्दों में कहा– **'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगे।'** उस समय इस प्रकार की सिंह गर्जना करने वाले वे एकमात्र महापुरुष थे। उनके इस उद्घोष से स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में लोगों में एक नए जोश खरोश की भावना पैदा हुई। उनकी इस प्रखरता के कारण उन्हें कुछ लोगों ने एक्टीमिस्ट तक की संज्ञा दी मगर यह एक ध्रुव सत्य है कि उनके साहसिक व्यक्तित्व के कारण ही गर्म दल का उदय हुआ। बाल, लाल और पाल की तिकड़ी ने क्रांति की मशाल को प्रखरता के साथ प्रज्वलित किया। इन्हीं के सक्रिय प्रयासों से ही भारतवर्ष को स्वतंत्रता प्राप्त हो सकी। भारत के लोगों के जनमानस में स्वतंत्रता की ललक पैदा करने के लिए इन्होंने 'केसरी' तथा अंग्रेजी 'मराठा' नामक पत्र निकाले। इनके सम्पादकीय वास्तव में ही जनमानस को उद्वैलित करने वाले होते थे। तिलक जी के इन प्रयासों से सरकार तिलमिला उठी तथा इनके विरूद्ध अशान्ति पैदा करने, कानून भंग करने और जनता को भड़काने के आरोप लगाकर इन्हें डेढ़ वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया। बाल, लाल, पाल की टोली उस समय क्रांति के पर्याय माने जाते थे। यदि भारत को तिलक जी का व्यक्तित्व न मिलता तो संभवतः इतनी जल्दी स्वतंत्रता का सपना साकार न हो पाता।

तिलक जी के अनुसार स्वराज्य प्राप्ति के अधिकार की भावना उन्हें महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश से मिली। महर्षि जी की इस भावना को व्यवहारिक रूप देने के लिए ये जिस समर्पण तथा प्रखरता के साथ कार्यक्षेत्र में उतरे वह अपने आप में एक मिसाल ही है। स्वराज्य को जन्मसिद्ध अधिकार घोषित करके उन्होंने नवयुवकों के रक्त में एक नया संसार पैदा कर दिया जो निरंतर उग्रता धारण करता चला गया। उनके व्यक्तित्व से प्रेरित होकर कितने ही युवक भारत माता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व आहुत करने के लिए अग्रसर हो गए। उनके व्यक्तित्व की इस प्रखरता ने ही उन्हें भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अमर कर दिया। सन् 1897 में तिलक जी मुम्बई विधान परिषद के सदस्य चुने गये और उन्होंने बहुत ही निडरतापूर्वक सरकार के कार्यकलापों की आलोचना की। भारतीय जनमानस को संगठित करने के लिए उन्होंने महाराष्ट्र में गणेशोत्सव की परम्परा चलाई जो आज भी प्रचलित है। इसी बीच महाराष्ट्र में अकाल तथा पूना में प्लेग से पीड़ित आम जनता की उपेक्षा के भाव को देखते हुए दो युवकों ने पूना के प्लेग कमीशनर रैड तथा एक और अंग्रेज अधिकारी की हत्या कर दी। तिलक जी का इस हत्या से हालांकि कोई सम्बन्ध नहीं था मगर अंग्रेज सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया तथा 18 महीने का कठोर कारावास दे दिया। इसके बाद सन् 1908 में सरकार ने उन पर राजद्रोह का मुकदमा बनाकर माण्डले जेल भेज दिया। उस समय उनकी आयु 52 वर्ष की थी। जून 1914 को इन्हें कालापानी से रिहा किया गया। इस दौरान ही इनकी धर्मपत्नी सत्यभामा जी का भी निधन हो गया। कारावास में ही उन्हें यह दुःखद समाचार दिया गया था। उस समय तिलक जी ने मार्मिक शब्दों में कहा था कि वे देश की दुर्दशा पर इतने रो चुके हैं कि अपनी जीवन

संगनी की मृत्यु पर रोने के लिए उनके पास आंसू ही नहीं बचे हैं। तिलक जी सिद्धहस्त लेखक थे। कालापानी की कारावास में इनके द्वारा लिखी गई 'गीता रहस्य' अपने आप में अद्‌भुत ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'ओरियन' और 'द आर्कटिक होम इन द वेदाज़' की भी रचना की।

व्यक्ति के कर्म ही उसकी सच्ची पहचान हुआ करती है, बाहरी वेशभूषा या शारीरिक बनावट नहीं। सेठ गोविन्ददास जी ने जब उन्हें सर्वप्रथम देखा तो उनके साधारण व्यक्तित्व के बारे में वे लिखते हैं—गेहुंआ रंग, न ठिगना और न ऊंचा तथा न दुबला और न मोटा शरीर, देखने में जरा भी आकर्षक नहीं। सिर पर मराठी पगड़ी, ऊपर के शरीर पर मराठी ढंग का अंगरखा और उस पर दुपट्टा। अंगरखे के नीचे धोती और पैरों में मराठी ढंग के लाल चप्पल। जिस प्रकार सूरत सीरत अनाकर्षक उसी प्रकार वेशभूषा भी इस प्रकार के साधारण व्यक्तित्व के व्यक्ति ने अपने ओजस्वी विचारों और शेरदिली के कारण जननायक के पद को सुशोभित किया। जननायक भी साधारण नहीं बल्कि विनोबा जी ने उन्हें अप्रीतम जननायक से सम्बोधित किया था। एक स्थान पर वे लिखते हैं तिलक के विषय में जब मैं कुछ कहने लगता हूं तो मुंह से शब्द निकलना कठिन हो जाता है। गद्‌गद् हो उठता हूं। साधु सन्तों का नाम लेते ही मेरी जो स्थिति होती है, वही इस नाम से भी होती है। मानों उनके स्मरण में ही यह शक्ति संचित है। तिलक जातितः ब्राह्मण थे, लेकिन जो ब्राह्मण नहीं है, वे भी उनका स्मरण कर रहे हैं। तिलक महाराष्ट्र के मराठे थे लेकिन पंजाब के पंजाबी और बंगाल के बंगाली भी उन्हें पूज्य मानते हैं। हिन्दुस्तान तिलक का ब्राह्मणत्व और उनका मराठापन, सब कुछ भूल गया है। यह चमत्कार है....इसमें रहस्य है... .इस रहस्य में तिलक का गुण तो है ही लेकिन हमारे पूर्वजों

की कमाई का भी गुण है। जनता का एक गुण और तिलक का एक गुण, दोनों के प्रभाव से यह चमत्कार हुआ कि ब्राह्मण और महाराष्ट्रीय तिलक सारे भारत में सभी जातियों द्वारा पूजे जाते हैं....उन्होंने श्री राम तथा महामुनि वशिष्ठ, शिवाजी आदि के साथ उनकी तुलना करते हुए कहा है कि अपने महान कृत्यों के कारण व्यक्ति अपने नाम को ऐसी सार्थकता प्रदान करता है कि दूसरों के लिए वह नाम प्रेरणा स्त्रोत बन जाता है। उनकी आस्था है कि सैकड़ों वर्षों के बाद भी तिलक का नाम ही पवित्र माना जाएगा....इतिहास के आकाश में उनका नाम तारे के समान चमकता रहेगा।

अपने महानतम एवं सार्वजनिक कार्यों के कारण व्यक्ति किसी एक जाति, स्थान का नहीं रहता बल्कि वह प्रत्येक व्यकित का पूजनीय बन जाता है। ऐसी ही मान विभूति को वास्तव में अप्रीतम जननायक की उपाधि मिला करती है। वे जन साधारण में कितने लोकप्रिय थे इसका प्रमाण उनके जीवन की उस घटना से मिलता है जो 1916 में लखनऊ में कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन के समय घटित हुई थी। आयोजकों को सूचना मिली कि तिलक जी स्पेशल ट्रेन से कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए लखनऊ आ रहे हैं। यह सूचना प्रत्येक के लिए उत्साहवर्धक और स्फूर्तिदायक बन गई। उनके स्वागत की तैयारी होने लगी। इस सम्बन्ध में तनसुखराम गुप्त जी लिखते हैं कि इस पर गर्म दल और नरम दल में तीव्र मतभेद हो गया कि स्वागत मात्र स्टेशन पर हो या उनका जुलूस निकाला जाए। साफ था कि यदि जुलूस निकाला गया तो जनता जनार्दन कांग्रेस अध्यक्ष के जुलूस से अधिक तिलक के शानदार जुलूस का स्वागत करेगी। यह अध्यक्ष का अपमान होगा। फलतः स्वागत समिति की बैठक हुई। निर्णय लिया गया कि तिलक जी का स्वागत केवल स्टेशन पर ही किया

जायेगा, शहर में सवारी नहीं निकाली जाएगी। इस निर्णय से विद्यार्थियों में विक्षोभ फैल गया। वे इस निर्णय का विरोध करने की योजना बनाने लगे। पं. बिस्मिल इस अधिवेशन में उपस्थित थे। उन्हें जब विद्यार्थियों के निर्णय का पता चला तो उन्होंने अपना सक्रिय समर्थन देने का निर्णय किया और विद्यार्थी वर्ग को सूचना दे दी। श्री बिस्मिल के सहयोग से यह निर्णय हुआ कि जैसे ही लोकमान्य स्पेशल ट्रेन से उतरें, उन्हें घेर कर कार में बिठा लिया जाए और सवारी निकाली जाए।

लोकमान्य के स्वागतार्थ लखनऊ स्टेशन पर जनता का अपार समूह उपस्थित था। तिलक जी की जय-जयकार से मानों गगन फटा जा रहा था। अपने प्रिय नेता की जयकार के द्वारा ब्रिटिश सरकार के प्रति अपना रोष प्रकट कर रही थी। स्पेशल ट्रेन आई तथा ज्यों ही लोकमान्य जी नीचे उतरे नरमदल वालों ने उनका अभिवादन अभिनन्दन किया और पलक झपकते ही कांग्रेस स्वयंसेवकों ने घेरा डालकर उन्हें कार में बिठवा दिया। श्री बिस्मिल की योजना धरी ही रह गई, पर वे भी हार मानने वाले नहीं थे। जैसे ही मोटर स्टार्ट होने लगी वैसे ही वे और एम.ए. का एक छात्र ोटर के आगे लेट गए। नरम दल के नेता उन्हें हटाने के लि दौड़े, किन्तु वे कब मानने वाले थे। समझाने बुझाने का परिणाम यह हुआ कि और अनेक लोग उनकी कार के आगे बैठ गए। सत्याग्रही अपने आग्रह पर अटल रहे। कांग्रेस नेताओं में गर्मागर्मी होने लगी। इन सत्याग्रहियों को नेतागण फटकारने लगे। परिणामतः बिस्मिल रो पड़े। उन्होंने अवरूध कण्ठ से कहा, मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ। उसी समय विद्यार्थी वर्ग और अधिक उतेजित हो गया और किसी ने मोटर का टायर काट दिया। गाड़ी वहीं बैठ गई। तिलक को ले जाने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष की गाड़ी मंगवाने का प्रस्ताव रखा गया, किन्तु स्वागत

समिति के सदस्यों ने इसे स्वीकार नहीं किया। तिलक जी मोटर से उतर गए। उन्होंने बिस्मिल और उनके साथियों को समझाने का प्रयास किया किन्तु बाल सेना के हठ के आगे किसी की न चली.....कुछ विद्यार्थी दौड़कर गए और किराए की एक घोड़ागाड़ी ले आए। उसमें से घोड़े खोलकर मालिक को सौंप दिए गए। लोकामन्य को गाड़ी में बिठाया और बिस्मिल तथा अन्य छात्र गाड़ी को खीचने लगे। इस प्रकार जुलूस चल पड़ा। जुलूस क्या था, एक शानदार स्वागत था। इतना भारी स्वागत कांग्रेस अध्यक्ष का भी नहीं हुआ था। फूलमालाओं की वर्षा हो रही थी। जयघोष के स्वर लखनऊ की दीवारों को भी प्रतिध्वनित कर रहे थे। जनता में उत्साह था, जोश था लोकप्रिय नेता के स्वागत की होड़ थी। हर आदमी उनकी गाड़ी का वाहक बनने में अपना जीवन सार्थक समझ रहा था.... विशाल जलूस चला जा रहा था। पेड़ों पर मकानों की छतों पर, छजों पर, बिजली के खंभों पर सब जगह मानव ही मानव थे। सभी अपने प्रिय नेता पर फूल बरसा रहे थे और उच्च स्वर में जय जयकार कर रहे थे। यह ऐतिहासिक स्वागत इस बात की गवाही देता है कि लोकमान्य जी लोगों में कितने मान्य थे। उन्होंने मन, वचन, कर्म से स्वयं को स्वतंत्रता संग्राम में आहुत कर दिया। उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं दी गईं मगर उनकी साधना अविरल चलती रही। वे अपने आप में ऊर्जा और संजीवता के उज्ज्वल स्रोत थे। वे साहस और निर्भीकता की अप्रतिम मूर्ति थे। अन्ततः उन पर मुकदमा चलाया गया। उन्हें अदालत के कटघरे में ला खड़ा किया गया। दिन के ग्यारह बजे सरकारी वकील कहने लगा, 'किंग्सफोर्ड पर बम्ब फेंकने वाले खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी आपके ही शिष्य थे। .....आपके 'केसरी' और 'मराठा' में प्रकाशित लेख अंग्रेजी शासन को उखाड़ फैंकने की साजिश

है....आपने सम्राट और सरकार के विरूद्ध क्रांति और बग़ावत का झण्डा उठा रखा है। अतः आप दोषी हैं....अदालत से प्रार्थना है कि वह साम्राज्य के हित में अभियुक्त को कठोर सजा दे। जज ने तिलक जी से पूछा, आपका जुर्म सिद्ध हो रहा है, क्या आपको कुछ कहना है? तिलक जी का चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने जज को सम्बोधित करते हुए कहा, मुझे जो कहना है उसे सरकार सुनने के लिए तैयार नहीं है। कितना जुल्म है कि हमें अपने ही देश में अपनी सच्ची बात कहने का भी अधिकार नहीं है। हम अपने देश, अपनी भाषा और अपने तिरंगे की रक्षा के लिए कुछ कहें तो उसे विद्रोह कहा जाता है। एक तिलक को सजा देने से कुछ नहीं होगा, इससे तो सैंकड़ों तिलक जन्म लेंगे और सभी का एक ही नारा होगा, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगे। इन विचारों को अदालत ने बहुत ही ख़तरनाक माना और तिलक जी को छः साल की कठोर सजा सुना दी। तिलक जी ने जेलों में कठोर यातनाएं सहीं मगर उनका कथन अक्षरशः सत्य था। उनके तप और त्याग से कितने ही युवक स्वतंत्रता की बलिवेदी पर तैयार होकर आहुत हो गए और लोकमान्य की घोषणा को चरितार्थ करके दिखा दिया कि हम स्वतंत्रता प्राप्त करके ही रहेंगे। इस प्रकार के जन नायक कभी मरा नहीं करते हैं बल्कि तिलक जी आज भी प्रत्येक भारतीय के हृदय में वैसे ही उत्साह का सृजन करने में सक्षम हैं। बलिदानियों का बलिदान आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वतः एक प्रेरणा स्रोत बन जाता है। आज हम उन्हें हार्दिक श्रद्धा से स्मरण करते हुए प्रतिज्ञा करें कि हम स्वतंत्र भारत की अस्मिता और अखण्डता के लिए निरन्तर संघर्षरत रहेंगे.... ..। अन्ततः भारत मां का यह सपूत अनेक संघर्षों में जुझता हुआ अस्वस्थ रहने लगा तथा 1 अगस्त, 1920 को इस जाज्वल्यमान नक्षत्र का अवसान हो गया।

3. श्यामजी कृष्ण वर्मा

क्रांतिवीर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने एक बार कहा था कि क्रांतिकारी, देशसेवी किसी भवन के कलश, उसके शिखरों पर नजर आने वाले, सजाकर संजोए गए पत्थर नहीं ये तो आजादी के भवन की वे आधारशीलाएं हैं जिन्हें सामान्यतः जानते हुए भी कोई देख नहीं पाता। उनकी बात अक्षरशः सत्य है क्योंकि यदि क्रांतिकारियों ने अपने जीवनों को उत्सर्ग न किया होता तो आज हम कदापि स्वतंत्र भारत में सांस नहीं ले रहे होते। ये क्रांतिकारी ही देश की नींव के पत्थर हैं। स्वयं श्याम जी कृष्ण वर्मा एक ऐसे महानायक हैं जिनका नाम भले ही आज आम जनता न जानती हो मगर उनके प्रयासों से ही वास्तव में हमें आजादी मिल पाई है क्योंकि वे लगभग समस्त क्रांतिकारियों के आदि गुरू थे। संयोग देखिए कि इस वीर का जन्म भी क्रांति वर्ष में ही हुआ। सन् 1857 जिसे भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम कहा जाता है, वही हमारे नायक का जन्म का वर्ष भी है। इनका जन्म 4 अक्टूबर, 1857 को करसन जी भसांली के यहां हुआ। इनके पिता गुजरात राज्य के कच्छ प्रदेश में मांडवी नगर के निकट विलायत गांव के निवासी थे। इनके माता पिता का उस समय ही निधन हो गया था जब अभी ये बहुत छोटी अवस्था के थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि तथा अत्यधिक मेधावी थे मगर निर्धन परिवार से सम्बन्ध होने के कारण इन्होंने धनाढय लोगों के यहां काम करके अपना जीवन निर्वाह किया। ऐसे ही लोगों ने उन्हें अध्ययन के लिए सहयोग दिया और अपने परिश्रम के कारण वे अध्ययनरत रहे। उन दिनों महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए कार्यक्षेत्र में दृढ़ता के साथ उतरे हुए थे। सन् 1874 में

महर्षि दयानन्द जी मुम्बई में आचार्य कमलनयन जी से शास्त्रार्थ कर रहे थे उसी समय श्याम जी का उनसे सम्पर्क हुआ। बाद में उन्होंने मुम्बई में महर्षि दयानन्द जी के प्रवचन सुने और उनसे अत्यधिक प्रभावित हुए। ये विधिवत् आर्यसमाज के न केवल सदस्य ही बनें बल्कि सन् 1877-78 में आर्यसमाज के उपदेशक भी रहे। महर्षि जी ने भी उनमें छिपी प्रतिभा को पहचाना और उन्हें संस्कृत तथा प्राचीन साहित्य का गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। प्रतिभा के धनी श्यामजी ने महर्षि के आग्रह पर संस्कृत का अध्ययन आरंभ किया और जल्दी ही वे अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत का अध्ययन आरंभ किया और जल्दी ही वे अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित बन गए। भाषण शैली और लेखनी की दृष्टि से भी कोई उनका सानी नहीं था। महर्षि जी को अपने सुयोग्य शिष्य पर इतना गुमान था कि उन्होंने अपने द्वारा गठित सभी ट्रस्टों के ट्रस्टी के रूप में भी उनकी नियुक्ति की। मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना हुई तो उसके सर्वप्रथम अध्यक्ष भी उन्हें ही बनाया गया।

उन्हीं दिनों आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक श्री मोनियर विलियम अपने विश्वविद्यालय के लिए एक ऐसे संस्कृत के पण्डित की खोज में मुम्बई आए जिसे संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा पर भी समान अधिकार हो। विलियम के आग्रह पर महर्षि दयानन्द जी ने वर्मा जी को इंग्लैंड भेजा और वहां जाते ही आक्सफोर्ड में उनकी विद्वता का डंका बजने लगा। उन्होंने अध्यापन के साथ-साथ अपना अध्ययन भी जारी रखा और एम.ए. करने के साथ-साथ वे बैरिस्टर भी बन गए। उन्होंने अपनी अद्भुत तार्किक बुद्धि से विदेशी विद्वानों की अनेक शंकाओं का निवारण किया। उन्होंने वैदिक एवं आर्य सभ्यता की प्राचीनता और श्रेष्ठता

से सभी को परिचित कराया। सन् 1881 में जर्मनी की राजधानी बर्लिन में प्राच्य विद्याओं का एक अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन हुआ जिसमें श्यामजी ने भी भाग लिया। उनके शोधपत्र का विषय था "संस्कृत एक जीवन्त भाषा है।" इस शोध पत्र से उनकी धाक जम गई। इस बीच उनका विवाह 1875 में एक धनी सेठ छब्बीलदास लल्लू भाई की सुपुत्री भानुमती से हो गया। परमात्मा की कृपा से उन्हें सहधर्मणी भी उनके विचारों के अनुकूल ही मिली तथा उन्होंने वर्मा जी के प्रत्येक कार्य में अपना सक्रिय सहयोग दिया।

सन् 1885 तक वे इंग्लैंड में रहे और इस दौरान महर्षि दयानन्द जी की मृत्यु तक निरन्तर उनसे उनका पत्र व्यवहार होता रहा और यह पत्र व्यवहार संस्कृत में ही होता था। जब वे 1885 में पुनः भारत लौटे तो उनका सर्वत्र स्वागत हुआ। अब योग्यता के आधार पर रजवाड़ों ने उन्हें अपने यहां उच्च पद देने की पेशकश की तो उन्होंने उदयपुर, रतलाम आदि राज्यों में कार्य किया मगर महर्षि दयानन्द जैसे क्रांतिकारी के इस शिष्य को अंग्रेजों के गुणगान गाने वाले उन रजवाडों के यहां नौकरी करना रास नहीं आया और उन्होंने अन्ततः उससे मुक्ति पा ली। सन् 1897 में जब प्लेग फैला तथा ब्रिटिश राज्य सत्ता ने लोकमान्य तिलक पर अभियोग चलाया तो इसका वर्मा जी के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। अतः उसी वर्ष वे पुनः इंग्लैंड चले गए। उन्हें यह पक्का विश्वास था कि गुलाम मानस से परिपूर्ण रजवाड़ों के यहां रहनेसे नहीं बल्कि भारत से बाहर रहकर क्रांतिकारी गतिविधियों को समग्रता के साथ चलाया जा सकता है। विदेश जाते ही उन्होंने वहां के बुद्धिजीवियों की बैठक बुलाई और इण्डियन होम रूल सोसायटी स्थापित की जिसका उद्देश्य भारत को स्वतंत्रता दिलाना था। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'सोशियालोजिस्ट' नामक पत्रिका का

प्रकाशन भी प्रारम्भ किया। यही नहीं उन्होंने 1905 में 25 कमरों का एक मकान खरीद कर ऐतिहासिक इण्डिया हाऊस की स्थापना की। उन्होंने घोषणा की कि जो छात्र अंग्रेजों की नौकरी न करने की तथा तन मन धन से देश सेवा का व्रत लेंगे ऐसे युवकों को प्रतिवर्ष दो हजार रूपए छात्रवृति के रूप में दिए जाएंगे। इण्डिया हाऊस की स्थापना वर्मा जी का एक ऐसा ऐतिहासिक कार्य था जिससे निश्चित रूप से स्वतंत्रता संग्राम को एक सही दिशा मिली। डॉ. हरदयाल, मैडम कामा, विपिन चन्द्रपाल, मदन लाल ढिंगरा तथा सावरकर आदि ने इण्डिया हाऊस जाकर तथा वर्मा जी के सानिध्य में ही क्रांतिकारी गतिविधियों को सक्रियता प्रदान की। इण्डिया हाऊस प्रत्येक क्रांतिकारी के लिए शरणस्थली और वर्मा जी प्रेरणास्रोत बन गए। यह स्थान क्रांतिकारियों के लिए किसी मन्दिर की तरह पावन बन गया। कहते हैं कि यही पर लेनिन, म. गोर्की, अल्डर्ड, महात्मा गांधी तथा भाई परमानन्द आदि अनेक नेता भी वर्मा जी से विचार विमर्श करने के लिए आए। महात्मा गांधी वर्मा जी को प्रभावित नहीं कर पाए क्योंकि वर्मा जी का मानना था कि केवल भीख मांगकर स्वतंत्रता नहीं मिल सकती है। उनका मानना था कि कांग्रेस की स्थापना अंग्रेजों ने इसलिए की ताकि तुष्टिकरण की नीति चलती रहे और 1857 जैसी क्रांतिकारी घटना फिर न घट सके। उन दिनों कांग्रेस में भी दो गुट थे गरम दल और नरम दल। वर्मा जी गरम दल के हिमायती थे क्योंकि महर्षि दयानन्द जी के सम्पर्क में रहकर उन्हें स्वराज्य प्राप्ति की प्रेरणा मिली थी। 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है', तिलक के इस उद्घोष को पूर्णता देने के लिए ही वे अपने सम्पर्क में आए प्रत्येक क्रांतिकारी को प्रेरित करते थे। सावरकर जी ने उनके बारे में बताया था कि पण्डित जी हर दृष्टि से उन्नत पक्ष के पक्षधर थे एवं प्रगतिशील थे।

धार्मिक पक्ष हो या समाज सुधार, हिन्दू समाज को जाति पाति की कुरीतियों से मुक्त कराना या हिन्दुस्तान के इतिहास का पुनर्लेखन या शिक्षा और स्वाधीनता का पक्ष और आर्थिक विषमताओं का समाधान- वर्मा जी क्रांतिकारी चेष्टाओं के द्वारा ही समाधान के पक्षधर थे।

श्यामजी की इन समस्त गतिविधियों की भनक ब्रिटिश सरकार को भी मिली और सन् 1907 में वहां की पार्लियामैंट में उनके विरूद्ध कार्रवाई करने की मांग भी उठी। अब अंग्रेज गुप्तचरों की इन पर कड़ी नजर रहने लगी। सुरक्षा की दृष्टि से वे इंग्लैंड छोड़कर पेरिस चले गए। उनके जाने के बाद इण्डिया हाऊस का समस्त कार्यभार सावरकर जी ने संभाल लिया। पेरिस में उनकी मुलाकात श्रीमती रूस्तम जी भीका कामा से पुनः हुई जो वर्मा जी के एक मात्र भाषण की प्रेरणा से ही क्रांतिकारी बन गई थी। वे अपने उपचार के लिए वहां गई हुई थी। अतः हमारे नायक वहां भी मैडम कामा और राव राणा जी के साथ मिलकर पुनः क्रांतिकारी गतिविधियों में लग गए। मैडम कामा वहां 'वन्देमातरम्' और 'तलवार' नामक दो पत्र निकालती थी। वर्मा जी सन् 1914 तक पेरिस में रहे मगर प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ जाने के कारण इंग्लैंड की सरकार का दबाव पड़ने के कारण उन्हें फ्रांस ने अपने यहां रहने देना उचित नहीं समझा और वे स्विट्जरलैंउ होते हुए जैनेवा चले गए। जब वे स्विटजरलैंड़ में थे तो जवाहरलाल नेहरू जी ने इनसे भेंट की थी तथा इन्हें बूढ़े शेर की संज्ञा दी थी। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक भारत मां की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते रहे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा एक ऐसे नरपुंगव थे जिनके हृदय में देशप्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे इण्डिया हाऊस के संस्थापक 'इण्डियन होमरूल सोसाइटी' के जनक 'इण्डियन

सोशियोलोजिस्ट' पत्रिका के प्रणेता ही नहीं बल्कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के ऐसे अनन्य शिष्य थे जिन्होंने ब्रिटेन में रहकर अपने पुरुषार्थ और प्रतिभा के बल पर ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने की सेंध लगाकर उसे ध्वस्त करने की सर्वप्रथम नींव रखी। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए ऐसे क्रांतिकारियों को तैयार किया जिन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर अंग्रेजों को भाग जाने के लिए मजबूर किया। भले ही वे अपनी आंखों से भारत मां को स्वतंत्र नहीं देख सके मगर स्वतंत्रता संग्राम में इस महामानव का सबसे अधिक सहयोग रहा है। अन्तिम दिनों में इन को सपत्नीक बहुत असहाय सी अवस्था में जीवन यापन करना पड़ा। अपनी बीमार पत्नी के साथ ये रहते थे। इनकी पत्नी बहुत अस्वस्थ रहने लगी थी हालांकि उनका निधन वर्मा जी के बाद 23 अगस्त, सन् 1933 में हुआ। वर्मा जी अस्वस्थ हुए तो उन्हें जेनेवा के एक प्रसिद्ध अस्पताल में भेजा गया। काफी उपचार के बाद भी वे स्वस्थ नहीं हो सके तथा इस महान क्रांतिकारी और नररत्न का 31 मई, 1930 को रात्रि साढ़े 11 बजे 73 वर्ष की आयु में निधन हो गया। अन्तिम समय में इनकी सहधर्मणी भानुमति जी इनके पास थी जिन्होंने प्रत्येक कठिनाई में इनका साथ दिया था। इनके कोई सन्तान नहीं थी। गुजरात के मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने इस क्रांतिकारी की अन्तिम इच्छा को पूर्ण करते हुए इनकी अस्थियों को 24 अगस्त, 2003 को भारत वर्ष की धरती पर लाने का पुण्य कार्य किया है। भले ही श्यामजी कृष्ण वर्मा सशरीर आज हमारे बीच नहीं हैं मगर उनकी यशोगाथा आने वाली पीढ़ियों के हृदयों में देशप्रेम की ज्वाला को सदा सर्वदा प्रज्वलित रखेगी। क्रांतिकारियों के आदि प्रणेता इस महामानव को शतशः नमन्.

.....

4. नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भारतीय इतिहास में एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप में सदा आलोकित रहेंगे। बहुमुखी प्रतिभा के मालिक नेता जी का जन्म 23 जनवरी, सन् 1897 को उड़ीसा के प्रसिद्ध नगर कटक में श्री जानकी नाथ बोस व श्रीमती प्रभावती बोस जी के यहां हुआ। ये अपने माता पिता की नौंवी सन्तान थे। मूलरूप में इनके पूर्वज बंगाल के चौबीस परगना मण्डल केदालिया ग्राम के रहने वाले थे। नेता जी बचपन से ही बहुत अधिक प्रतिभाशाली थे। इनके पिता कटक के गिने चुने प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे इसलिए सुभाष जी का पालन पोषण सुख सुविधाओं के बीच हुआ। इस प्रकार के सुखमय वातावरण में पलने के बावजूद भी नेता जी के मन में दीन दुखियों के प्रति बहुत अधिक दया का भाव था। इसका प्रमाण है कि विद्यार्थी जीवन में ही जब उनके निकट के गांव में विषूचिका व्याधि का प्रकोप हुआ तो ये बिना किसी को बताए रोगियों की सेवा शुश्रुषा करने घर से निकल गए थे तथा सेवा कार्य करके लौट आए थे। सन् 1913 में इन्होंने 'मिशनरी स्कूल' से प्रान्त भर में द्वितीय स्थान प्राप्त करके दसवी की परीक्ष पास की। ये बचपन से ही साहसी तथा स्वाभिमानी प्रवृत्ति के थे। एक बार किसी अंग्रेज़ बालक ने कह दिया कि बंगाली लोग बड़े ख़राब होते हैं, बस इतना सुनने पर स्वाभिमानी सुभाष ने उसको पीट डाला। इसी प्रकार कालेज के एक प्राध्यापक ई.एफ. ओटन ने जब भारतीयों के प्रति कुछ अपमान जनक शब्द कहे तो इन्होंने तुरन्त उठकर उसके गाल पर एक ज़ोरदार चांटा मारते हुए कहा कि ज़ुबान संभाल कर बात करो। एक बार इनके हृदय में वैराग्य के भाव भी पैदा हुए तथा लगभग सत्रह वर्ष की आयु में वे संन्यासी

बनने के लिए घर से भाग निकले मगर हरिद्वार एवं वृन्दावन आदि में पाखंडी साधुओं का अपवित्र जीवन देखकर ये पुनः घर लौट आए तथा जीवन से पलायन करने के स्थान पर कर्मशीलता का मार्ग अपनाया। कलकत्ता के प्रेज़ीडेन्सी कॉलेज से इन्होंने सन् 1915 में इण्टरमीडिएट की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। बी.ए. में इन्होंने अपनी रूचि के अनुसार दर्शन शास्त्र का विषय लिया। दर्शन के अध्ययन से नेता जी का व्यक्तित्व और भी अधिक निखर कर सामने आया। स्कॉटिश चर्च कालेज से उन्होंने बी.ए. की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में ही पास की। उसके बाद इनके पिता जी ने भारतीय सिविल सर्विस की प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए इन्हें लन्दन भेज दिया। लन्दन जाकर इन्होंने न केवल आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण की बल्कि कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से भी बी.ए. की परीक्षा पास कर ली।

नेता जी स्वदेश लौटे तो सन् 1919 में हुए जलियांवाला बाग़ की अमानवीय घटना के कारण पूरे देश में राजनैतिक उथल-पुथल का वातावरण था। गांधी जी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन का जनता पर व्यापक प्रभाव थे। नेता जी के पिता पक्के राजभक्त थे तथा वे चाहते थे कि अब सुभाष चन्द्र सरकारी सेवा में जाकर धन और यश प्राप्त करे मगर नेता जी ने आराम का जीवन जीने से देश की सेवा करना श्रेयस्कर समझा और राजनैतिक आन्दोलन में कूद पड़े। वे चित्तरंजन दास जी की स्वयंसेवक मण्डली में भरती हो गए। उन दिनों इंग्लैंड के युवराज का भारत में आगमन हो रहा था तथा उनके स्वागत की तैयारियां हो रही थीं। कुछ क्रांतिकारियों ने उनके स्वागत का विरोध किया जिनमें नेता जी भी थे अतः इस आरोप में सरकार ने उन्हें गिरफ़्तार कर लिया तथा छः वर्ष के कारावास का दण्ड दिया। जब वे रिहा होकर आए तो

उतरी बंगाल में भयंकर बाढ़ आई तथा उससे जान माल की बहुत अधिक हानि हुई। नेता जी पूरे समर्पण के साथ सेवा कार्य में जुट गए। स्वराज्य पार्टी की ओर से उन दिनों 'फ़ारवर्ड' नाम का दैनिक पत्र निकलता था। नेता जी को उसका सम्पादक बनाया गया तथा इस सम्पादन के माध्यम से नेता जी की प्रतिभा खुलकर सामने आई। सन् 1924 में नेता जी कलकता के चीफ़ एग्ज़ीक्यूटिव अधिकारी बने। इसी बीच उन्हें बंगाल अध्यादेश के अन्तर्गत कैद कर लिया गया। जेल में नेता जी अत्यधिक गंभीर रूप से बीमार हो गए तथा सरकार ने उन्हें 15 मई, 1927 को रिहा कर दिया। डाक्टरों ने उन्हें स्वास्थ्य सुधार के लिए स्विटजरलैंड जाने का परामर्श दिया मगर अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करके पुनः कार्यक्षेत्र में उतर गए। राष्ट्रीय महासभा ने पूर्ण स्वराज्य का नारा दिया तथा 26 जनवरी, सन् 1930 को स्वाधीनता दिवस मनाया गया। नेता जी के नेतृत्व में एक जुलूस निकाला गया जिस पर सरकार ने लाठीचार्ज किया तथा नेता जी को बन्दी बनाकर एक वर्ष का दण्ड दिया गया। जेल में नेता जी का स्वास्थ्य पुनः बिगड़ गया। उन्हें इस शर्त पर रिहा किया गया कि वे रिहा होते ही सीधे यूरोप चले जाएंगे अतः नेता जी स्विटज़रलैंड चले गए। पिताजी की मृत्यु पर वे स्वदेश लौटे मगर लगभग एक महीना रहकर पुनः यूरोप चले गए। उन्होंने फ्रांस तथा इंग्लैंड आदि देशों की यात्राएं कीं तथा बड़े-बड़े लोगों से मुलाकातें करके भारतीय स्वतंत्रता के प्रति अपने विचार रखे। कुछ समय बाद अपने देश से बाहर रहकर ये ऊब गए तथा स्वदेश लौटने के लिए व्यग्र हो गए मगर यहां पर आते तो उन्हें तुरन्त बन्दी बनाकर लिया जाता। इसके बावजूद भी वे स्वदेश आए तथा बम्बई पहुंचते ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। जेल में उनका स्वास्थ्य पुनः ख़राब हो गया तो वे यूरोप चले गए।

वहां जाकर उन्होंने ब्रिटिश शासन की बहुत ही कड़े शब्दों में भर्त्सना करनी आरंभ कर दी।

सन् 1938 में वे निर्विरोध कांग्रेस के प्रधान बने परन्तु गांधी जी के साथ उनकी विचारधारा नहीं मिली। सन् 1939 में गांधी जी के विरोध के बावजूद चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया और गांधी जी के उम्मीदवार डॉ. पट्टाभिसीतारमैया को पराजित करके पुनः कांग्रेस के प्रधान बने। गांधी जी ने इसे अपनी हार माना तथा नेता जी को किसी प्रकार सहयोग न देने का फ़ैसला किया। हालांकि गांधी जी के विरोध के बावजूद उनका चुना जाना उनकी लोकप्रियता का प्रमाण था। मात्र अड़तीस वर्ष की आयु में इस प्रकार का सम्मान मिलना वास्तव में ही अप्रतिम था। वे चाहते तो गांधी की नाराज़गी के बावजूद भी प्रधान बने रहकर गांधी जी को ही अलग थलग कर सकते थे मगर वे किसी प्रकार का और अधिक गतिरोध पैदा नहीं करना चाहते थे। इसी बीच सन् 1939 में विश्वयुद्ध छिड़ गया। गांधी जी का विचार अंग्रेज़ सरकार को सहयोग देने का था मगर सुभाष जी इसके पक्ष में नहीं थे। अन्ततः इन्होंने 22 जून, 1940 को कांग्रेस के प्रधान पद से त्याग पत्र दे दिया। अब उनके मन में कोई क्रांतिकारी संगठन बनाने का विचार आया तथा उन्होंने फ़ारवर्ड ब्लॉक की स्थापना की। अगले वर्ष राजगढ़ में सम्पन्न हुए अधिवेशन में नेता जी ने बहुत ही ओजस्वी भाषण दिया जिससे गांधी तथा उनके भक्त और भी अधिक नाराज़ हो गए और राष्ट्रीय महासभा की सदस्यता से ही नेता जी को निष्कासित कर दिया। नेता जी ने बंगाल में कालकोठड़ी स्मारक को हटा देने तथा सामूहिक आन्दोलन के लिए जनता का आवाहन किया। नेता जी को जनता का अपार सहयोग मिला तथा इस आन्दोलन ने ब्रिटिश सरकार को हिलाकर रख दिया। अन्ततः नेता जी को बन्दी

बना दिया गया। नेता जी इस अवसर को प्रभावहीन नहीं होने देना चाहते थे। अतः उन्होंने जेल में अनशन रख दिया। सरकार इससे और अधिक घबरा गई और नेता जी को रिहा तो कर दिया गया मगर उनके घर पर कड़ा पहरा लगा दिया गया।

अब तक नेता जी को भी इस बात का पूरी तरह से आभास हो गया था कि कांग्रेस की ढीलमुल नीति के आधार पर स्वतंत्रता प्राप्त करना असंभव है अतः वे भारत मां को स्वतंत्र कराने के लिए किसी सशस्त्र क्रांति की योजना बनाने लगे। इन्होंने लोगों से मिलना जुलना एकदम बन्द कर दिया। घर के सदस्य भी इनसे नहीं मिल सकते थे। भोजन देने वाले नौकर को भी भीतर आने का आदेश नहीं था। वह दरवाज़े के बाहर ही भोजन रख दिया करता था। इधर बिल्कुल ही गुप्त रूप से वे भाग जाने की तैयारी में लग गए। नेता जी ने अपनी दाढ़ी भी बढ़ा ली थी। अन्ततः 17 जनवरी, 1941 को उनके बाहर जाने की तैयारियां पूरी हो गईं। वे रात्रि के एक बजकर पच्चीस मिनट पर उठे और धीरे धीरे दबे पांव घर से निकल पड़े। नेता जी ने एक पठान का भेस बना रखा था। प्रातः काल उनकी कार धनबाद पहुंच गई। जनवरी 18 सन् 1941 को रात्रि के अन्धेरे में नेता जी गोमो रेलवे स्टेशन से दिल्ली कालका मेल के एक डिब्बे में बैठ गए। अपने साथ आए तीनों व्यक्तियों को उन्होंने अन्तिम विदाई दे दी। ये तीन लोग थे नेता जी के बड़े भतीजे अशोक बोस तथा उनकी पत्नी और कार का ड्राइवर यानि उनके छोटे भतीजे डाक्टर शिशिर बोस। जनवरी 21, 1941 को नेता जी की मुलाकात श्री भगतराम से हुई तथा दोनों ने आगे का सफ़र तय करना आरंभ किया। सर्दी का बहुत अधिक प्रकोप था तथा नेता जी पैदल

चलकर बहुत अधिक थक चुके थे मगर जैसे-कैसे ये लोग 'खजूरी मैदान' से चलकर 26 जनवरी को रात के लगभग 12 बजे 'पिशकान मैना' गांव पहुंच गए। वहां पर रात एक मस्जिद में काटी और भयंकर सर्दी में पुनः अगला सफ़र आरंभ हो गया तथा 36 घंटों की पैदल तथा खच्चर द्वारा बहुत ही कठिन यात्रा करने के बाद ये दोनों अफ़ग़ानिस्तान के गाड्डी गांव तक पहुंच गए।

अगला सफ़र काबुल के लिए था। अब भगतराम जी ने रहमत अली ख़ां का भेस बना लिया और सुभाष जी रहमत अली ख़ां के गूंगे तथा बहरे चाचा ज़ियाउदीन बन गए। इन्होंने काबूल नदी को एक तैराक की सहायता से तैर कर पार किया और 'लालपुरा' पहुंच गए। फिर पुनः पैदल यात्रा आरम्भ हुई। नेता जी बहुत बुरी तरह थक चुके थे मगर फिर भी भूखे प्यासे इन लोगों ने अपना सफ़र जारी रखा तथा 31 जनवरी को ये काबुल पहुंच गए। वहां उन्होंने एक धर्मशाला में रात गुज़ारी और अगले दिन रूसी दूतावास से सम्पर्क साधने का प्रयास किया मगर चार दिनों तक भी वे इसमें सफल नहीं हो सके। इसी बीच एक अफ़ग़ान गुप्तचर इनके पीछे लग गया। रहमत अली ख़ां ने उससे कहा कि वे अपने गूंगे और बहरे चाचा ज़ियाउदीन का उपचार कराने के सिलसिले में आए हैं.....वह गुप्तचर लगातार उनके पीछे लगा रहा तथा उसने सोने की घड़ी और कुछ पैसे लेकर ही उनका पीछा छोड़ा। इधर रूसी दूतावास में काम न बनने की दशा में नेता जी जर्मन दूतावास गए मगर वहां भी काम नहीं बन सका। भगतराम के एक मित्र उत्तम चन्द ने पहले एक सराय में तथा बाद में अपने ही घर पर उनके ठहरने की व्यवस्था की। जर्मन दूतावास में भी जब काम नहीं बना तो नेता जी ने याकूब नाम के एक व्यक्ति को चार सौ रूपए देकर रूस की सरहद पार करने की

योजना बना ली। मगर इसी बीच 12 मार्च को उत्तमचन्द की दुकान पर इटली के राजदूत की पत्नी श्रीमती कोरानी ने आकर बताया कि रूसी दूतावास की सहमति प्राप्त हो गई है।

नेता जी ने जर्मन से सम्पर्क साधा तथा इटली ने भी उनकी सहायता की। हिटलर उनका बहुत सम्मान करता था। बर्लिन रेडियो से नेता जी के भाषण प्रतिदिन आठ बजे प्रसारित होते थे। इस प्रसारण का नाम था 'समुद्र पार से भारतवासियों के नाम बाबू सुभाषचन्द्र का सन्देश।' लोग भारतवर्ष में नेता जी के क्रांतिकारी उद्‌बोधन को बड़ी उत्सुकता से सुनते थे। अन्ततः सरकार ने उसे सुनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया मगर लोग फिर भी चोरी-छिपे अपने महबूब नेता को सुनते थे। नेता जी ने मसोलिनी तथा उसके जमाता काऊंट चियानों से भी भेंट की। जून, सन् 1943 में वे जापान की राजधानी टोकियो पहुंच गए। जापान में रह रहे श्री रास बिहारी बोस जी ने इंडियन इंडिपैन्डैंस लीग की स्थापना की थी। बाद में जनरल मोहनसिंह के नेतृत्व में कैद किए गए ब्रिटिश भारतीय सैनिकों की 'इंडियन नेशनल आर्मी' निर्मित की गई। इस आर्मी का लक्ष्य भारत को स्वतंत्र कराना था। जापान से वैचारिक मतभेद हो जाने के कारण बाद में मोहनसिंह जी ने आई.एन.ए. के जनरल पद को छोड़ दिया। जुलाई 4, सन् 1943 को सिंगापुर के निकट कैथे नामक स्थान पर रासबिहारी बोस जी ने एक अधिवेशन बुलाया जिसमें सुभाष जी को 'आज़ाद हिन्द दल' को नेता बनाया गया। उससे अगले ही दिन अर्थात् 5 जुलाई को नेता जी ने आज़ाद हिन्द सेना के गठन की घोषणा कर दी और स्वयं को इसका नेता घोषित किया। उन्होंने म्युनिसिपल भवन के विशाल मैदान में लगभग पच्चास हज़ार नागरिकों और सैनिकों के जनसमूह को सम्बोधित करते हुए कहा—'भारत

की मुक्ति सेना के सैनिकों, आज का दिन मेरे जीवन का सबसे गर्व का दिन है। मैं सारे संसार को यह बता रहा हूं कि भारत को आज़ाद कराने वाली फ़ौज खड़ी हो गई है। यह सेना वह सेना ही नहीं है जो केवल आज़ादी दिलाएगी, यह वह सेना है जो स्वाधीन भारत के राष्ट्रीय नेता का गठन करेगी....मेरे साथियों, मेरे सैनिकों, अब आपका रणघोष होगा– दिल्ली चलो। ....मुझे नहीं मालूम कि आज़ादी की इस जंग में हम में से कितने लोग ज़िंदा बचेंगे। लेकिन मैं जानता हूं कि अन्त में विजय हमारी होगी और हमारा काम तब तक पूरा नहीं होगा जब तक कि हमारे बचे हुए बहादुर ब्रिटिश साम्राज्य के एक अन्य कब्रिस्तान- दिल्ली में लालकिले में जीत की परेड नहीं निकाल लेते...

नेता जी ने इतनी कार्यकुशलता के साथ इस काम को आगे बढ़ाया कि समूचा विश्व भारत मां के इस लाल के साहस को देखकर दंग रह गया। अन्ततः 21 अक्टूबर, 1943 को उन्होंने आज़ाद हिन्द सरकार का विधिवत् गठन करके उसका घोषणा पत्र भी जारी कर दिया। उन्होंने इस अवसर पर शपथ लेते हुए कहा, 'ईश्वर के नाम पर मैं सुभाष चन्द्र वसु भारत और 38 करोड़ देशबन्धुओं को मुक्त कराने के लिए अपनी अन्तिम सांस तक स्वाधीनता का पवित्र युद्ध जारी रखूंगा। मैं हमेशा भारत का सेवक बना रहूंगा और अपने 38 करोड़ भारत बन्धुओं-भगनियों की भलाई का ध्यान रखूंगा। यही मेरा कर्तव्य होगा। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी उसकी रक्षा के लिए मैं अपने खून की अन्तिम बूंद भी देने के लिए तैयार रहूंगा।' आज़ाद हिन्द सरकार का अभिवादन था 'जय हिन्द', राष्ट्रीय चिन्ह था–'टीपू सुलतान का सिंह', राष्ट्रीय गीत था 'शुभ सुख चैन की बरखा बरसे....'। नेता जी इस सरकार के प्रधानमंत्री बनें तथा युद्ध और विदेश मंत्रालय भी अपने पास

रखा। इस सरकार को जापान, जर्मनी, बर्मा, फिलिपाईन, कोरिया, इटली, चीन, मंगोलिया और आयरलैंड की सरकारों ने अस्थाई मान्यता भी दे दी। नेता जी ने इंग्लैंड और अमेरिका के विरूद्ध युद्ध की घोषणा भी कर दी। सेना का मुख्य कार्यालय रंगून में बनाया गया था। नेता जी की दूरदर्शिता का यह एक अद्भुत प्रमाण है कि उन्होंने आज़ाद हिन्द फ़ौज को भारत वर्ष में हो रहे स्वतंत्रता के समग्र प्रयासों के साथ जोड़ते हुए अपनी ब्रिगेडों के नाम नेहरू बिग्रेड, गांधी ब्रिगेड, आज़ाद ब्रिगेड, पटेल ब्रिग्रेड, तथा रानी झांसी ब्रिगेड आदि रखे। कालादान की पहाड़ियों में आज़ाद हिन्द फ़ौज के बहादुरों ने अंग्रेज़ी सेना के छक्के छुड़ा दिए तथा अंग्रेज़ी सेना को भागना पड़ा। युद्ध में अंग्रेज़ी सेना के बहुत से सिपाही मारे गए। आज़ाद हिन्द सेना के भी 15 वीर शहीद हुए। इस युद्ध में सेना को भारी मात्रा में रसद और अस्त्र-शस्त्र प्राप्त हुए। मार्च 18 1944 को आज़ाद हिन्द फ़ौज मणिपुर की राजधानी इम्फाल से 40 किलोमीटर दूर मोर्रंग गांव पहुंच गई। मातृभूमि पर कदम पड़ते ही सेना का उत्साह और अधिक बढ़ गया। नेता जी के आदेश पर यहां पर कर्नल शौकत अली के हाथों भारत भूमि पर प्रथम बार आज़ाद हिन्दुस्तान का तिरंगा लहराया गया। इसके बाद अण्डेमान व निकोबार द्वीप समूह को आज़ाद कराकर नेता जी ने उनका नाम 'शहीद' और 'स्वराज' रखा।

नेता जी अत्यधिक स्वाभिमानी और साहसी थे। वे अपने सैनिकों को निरन्तर प्रेरित करते रहते थे। एक बार उन्होंने कहा था—'मेरी निष्ठा भारत के और अकेले भारत के प्रति है। मेरे शत्रु भी यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकते कि मैं अपने देश के साथ धोखा कर सकता हूं। मैंने कुछ दिन

पहले टोकियो में कहा था कि ब्रिटिश सरकार ने मुझे सारी ज़िन्दगी सताया है लेकिन यदि वह भी मेरी हिम्मत नहीं तोड़ सकी, तो दुनिया की और कोई ताकत ऐसा नहीं कर सकती। यदि कुटिल ब्रिटिश राजनीतिज्ञ मुझे न फुसला सके तो और कोई ऐसा नहीं कर सकता।' अपने बहादुर सैनिकों को उन्होंने कहा था—....स्वतंत्रता संग्राम के मेरे साथियों! आज मैं आपसे सबसे बढ़कर एक चीज़ की मांग करता हूं। मैं आपसे खून की मांग करता हूं। शत्रु ने जो खून बहाया है उसका बदला खून ही हो सकता है। खून ही आज़ादी की कीमत चुका सकता है। 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा।'

आज़ाद हिन्द सेना इतनी बहादुरी के साथ आगे बढ़ रही थी कि मानों यह शीघ्र ही अंग्रेजों से भारतवर्ष को मुक्त करा लेगी मगर एक सक्षम सरकार के साथ लड़ना इतना आसान नहीं था। फ़ौज को वायुयान तथा अन्य युद्ध सामग्री के अभाव में पीछे हटना पड़ा। तैयारी करके पुनः उन्होंने आक्रमण किया, कुछ सफलता भी मिली मगर अब तक अंग्रेजी सरकार को नेता जी की पूरी तैयारी का पता चल चुका था तथा उन्होंने सीमा पर सेना का भारी जमावड़ा कर दिया और साथ ही भारी तोपखाने और बम वर्षक जहाज तैनात कर दिए। अन्ततः युद्धसामग्री के अभाव में फ़ौज के पांव उखड़ गए और उन्हें पीछे हटना पड़ा। मई 5, 1945 में अंग्रेजों ने रंगून पर अपना अधिकार कर लिया। रंगून छोड़ती बार नेता जी ने कहा था—'अगर हम आज़ादी की लड़ाई लड़ते-लड़ते गिर भी जाएंगे तो तिरंगा हमारे हाथ में होगा।' ब्रिटिश सरकार ने आज़ाद हिन्द फ़ौज के लगभग 750 अधिकारियों तथा हजारों सैनिकों को भी गिरफ़्तार कर लिया। फ़ौज की सारी सम्पत्ति जिसमें एक आज़ाद हिन्द बैंक तथा पैंतीस लाख रूपए थे, ज़ब्त कर लिए गए। कैदियों पर मुकदमा चलाने के लिए उन्हें भारत भेज

दिया गया। पांच नवम्बर, 1945 को दिल्ली के लाल किले में पकड़े गए सैनिकों पर देशद्रोह का मुकदमा आरंभ हुआ। इसके विरोध में पूरे देश में प्रदर्शन हुए मगर अंग्रेज़ी हकूमत द्वारा मेजर जनरल शाहनवाज़ खां, कर्नल ढिलों तथा कर्नल सहगल को आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। इस दण्ड के विरोध में पूरे देश में अत्यधिक उग्र विरोध हुआ तथा ब्रिटिश सरकार को यह दण्ड निरस्त कर देना पड़ा और गिरफ़्तार किए गए अन्य सैनिकों को भी रिहा करना पड़ा।

इधर नेता जी इस स्थिति से भी निरूत्साहित नहीं हुए। उनके सामने अब सबसे बड़ी प्राथमिकता थी स्व्यं को अंग्रेज़ी हकूमत से बचाए रखना ताकि पुनः युद्ध का संचालन किया जा सके। वे वायुयान द्वारा टोकियो पहुंचना चाहते थे। अगस्त, 17, 1945 को सायं साढ़े पांच बजे जापानी विमान 'सौगान' इन्हें सिंगापुर से लेकर उड़ा और 18 अगस्त, 1945 को 'तोड़रान' से 'फ़ार्मोसा' के भाग 'तेईपेई' में पहुंचा। दो घण्टे का विश्राम करके विमान पुनः उड़ा मगर उसमें आग लग गई। अपने महबूब नेता जी के बारे में सभी भारतीय चिन्तित थे मगर 23 अगस्त को टोकियो रेडियो से समाचार प्रसारित हुआ कि सुभाष बोस 18 अगस्त को वायुयान दुर्घटना में घोर रूप से घायल होकर उसी रात को इस संसार से चल बसे। इस घटना ने समूचे भारतीय जनमानस को झकझोर कर रख दिया। कोई भी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं था कि नेताजी अब इस संसार में नहीं रहे हैं। आज भी भारतीय जनमानस इस बात को लगातार नकारता आ रहा है कि नेता जी नहीं रहे हैं....नेता जी की लोकप्रियता का इससे बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं हो सकता है। नेता जी अमर हैं और सदा अमर ही रहेंगे.....।

5. लाला लाजपतराय

पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय जी बहुमुखी प्रतिभा के मालिक थे। वे एक ओजस्वी वक्ता, समर्पित समाजसेवी, सिद्धहस्त लेखक, कुशल सम्पादक, कट्टर राष्ट्रवादी राजनीतिज्ञ, भावुक हृदय, शिक्षा शास्त्री एवं निर्भीक क्रांतिकारी थे। लाला जी का पैतृक गांव लुधियाना जिले में जगरावं था मगर उनका जन्म उनके ननिहाल गांव ढुंढिके ज़िला फ़रीदकोट (पंजाब) में 28 जनवरी, 1865 को हुआ। इनके पिता जी का नाम राधाकृष्ण तथा माता का नाम गुलाबी देवी था। राधाकृष्ण जी स्कूल में अध्यापन का कार्य करते थे तथा इस्लाम से बहुत अधिक प्रभावित थे। एक बार तो ये अपने मित्र लाला दुनीचन्द के साथ मुसलमान बनने ही चले गए थे मगर इनकी पत्नी अपने पुत्र (लाजपत) का वास्तव देकर इन्हें मस्जिद की सीढ़ियों पर से वापस ले आई थी। वे नमाज पढ़ते थे और रोज़ा आदि भी रखते थे मगर हिन्दू धर्म में आस्था रखने वाली उनकी पत्नी इस बात से बहुत दुखी थी तथा अपने पति से चोरी-छिपे अपने हिन्दू कर्मकाण्ड कर लिया करती थी, हालांकि उन्हें इसके लिए पति के कोप का शिकार बनना पड़ता था। इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय जी ने लिखा है कि 'मेरी माता अपने पति के अत्याचारों पर घंटों रोया करती थी। कई दिनों तक खाना नहीं खाती थी।..... मेरी माता जी में बहुत अच्छे सद्गुण थे। उनके कुछ अच्छे गुण मुझे विरासत में मिलते थे। मैं अपनी माता जी का शुक्रगुज़ार हूं वह मुझे अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करती थी। मेरे पिता जी ने मुझे पढ़ाई आदि में पूरी रूचि दिखाई।' आगे चलकर जब लाला लाजपत जी आर्यसमाजी बन गए तो वैदिक साहित्य पढ़ने के बाद इनके पिता जी वेदान्ती बन गए थे।

लाजपतराय जी की शिक्षा पांचवें वर्ष में आरंभ हुई। सन् 1880 में इन्होंने कलकत्ता तथा पंजाब विश्वविद्यालय से ऐण्ट्रेस की परीक्षा एक ही वर्ष में पास की और आगे पढ़ने के लिए लाहौर आ गए। यहां पर उन्होंने गवर्मैंट कालेज में प्रवेश लिया तथा 1882 में एफ.ए. और मुख्तारी (कानून) की परीक्षा भी साथ-साथ ही कर ली। यहां पर हंसराज तथा पण्डित गुरूदत्त जी उनके सहपाठी थे तथा इन्हीं के माध्यम से उनका सम्पर्क आर्यसमाज से हुआ। आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द जी की विचारधारा से वे बहुत ही अधिक प्रभावित हुए। उनका कहना था कि 'मेरे जीवन का जो भी उत्तम भाग है वह सब आर्यसमाज की बदोलत है....आर्यसमाज के उपकार मेरी गर्दन पर अनन्त व असीम हैं। अगर मेरा रोम-रोम आर्यसमाज पर न्योछावर हो जाए तो भी मैं इन उपकारों से उऋण नहीं हो सकता.. ...।' महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा आर्यसमाज से ये कितने अधिक प्रभावित हुए यह उनके इन शब्दों से मालूम होता है—'आर्यसमाज मेरी धर्म की मां तथा महर्षि दयानन्द मेरे धर्मगुरू हैं।' 30 अक्टूबर, 1883 में महर्षि दयानन्द जी का देहावसान हो गया तथा 9 नवम्बर, 1883 को लाहौर में आर्यसमाज की ओर से एक शोक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में निर्णय हुआ कि महर्षि जी की स्मृति में एक महाविद्यालय की स्थापना की जाए। इसी क्रम में कालान्तर में डी.ए.वी. की स्थापना हुई जिसमें लाला लाजपतराय जी की भी विशेष भूमिका रही।

हालांकि एक मुख्तार के रूप में उन्होंने अपने मूल निवास स्थान जगरांव में ही वकालत आरंभ कर दी थी मगर छोटा कस्बा होने के कारण यहां पर कार्य बढ़ने की संभावना बहुत कम थी इसलिए सन् 1885 में ये रोहतक आ गए तथा यहां रहते हुए इन्होंने वकालत की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। उसके

बाद सन् 1886 में ये हिसार में आकर वकालत करने लगे तथा साथ ही आर्यसमाज तथा राजनीति के माध्यम से समाजसेवा आदि अन्य गतिविधियों में भी भाग लेने लगे। सन् 1888 में ये प्रथम बार कांग्रेस के इलाहाबाद अधिवेशन में सम्मिलित हुए जिसकी अध्यक्षता मि. जार्ज यूल ने की थी। कांग्रेस में इनकी गतिविधियां निरन्तर बढ़ती गईं तथा सन् 1907 में पण्डित गोपालकृष्ण गोखने जी के साथ एक शिष्टमण्डल के सदस्य के रूप में इंग्लैंड गए और वहां से अमेरिका चले गए। लाला लाजपत राय जी के कांग्रेस में आने से कांग्रेस की कार्यपद्धति में बहुत परिवर्तन हुआ। उन दिनों कांग्रेस के अधिवेशनों का समापन 'गाड सेव द किंग' गान के साथ हुआ करता था। सन् 1905 में जब बनारस में कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर ब्रिटिश युवराज के भारत आगमन पर उनका स्वागत करने का प्रस्ताव आया तो स्वाभिमानी लाला जी ने इसका डटकर विरोध किया। मानों यहीं से कांग्रेस में गर्म व नरम दो विचारधाराओं की नींव पड़ गई। बहुत से लोगों को इस बात का अहसास होने लगा कि स्वतंत्रता केवल गिड़गिड़ाने से नहीं मिलेगी। बल्कि इसके लिए कुछ कुर्बानियां देनी होंगी। उधर सन् 1905 में लार्ड कर्ज़न ने भारतीय चेतना को दबाने के लिए बंगाल के दो टुकड़े कर दिए तो इस घटना ने भारतीय जनमानस को हिलाकर रख दिया। बंगाल से विदेशी माल के बहिष्कार और स्वदेशी का आन्दोलन चला जिसका कुशल नेतृत्व लाला जी तथा बाल गंगाधर तिलक ने किया। इसी समय कांग्रेस में लाल, बाल, पाल, रूपी गर्मदल बड़ी तेज़ी के साथ उभरा।

सन् 1907 में जब पंजाब में किसानों में अपने अधिकारों को लेकर चेतना पैदा हुई अंग्रेज़ सरकार ने लायलपुर आदि में नहरें निकालकर पानी देने का जो प्रबन्ध किया था उस कानून में फेरबदल करके उतराधिकारी के कानून को समाप्त करना चाहती थी। लाला जी तथा सरकार अजीतसिंह की ओजस्वी

वाणी से पंजाब का किसान जाग उठा। गली गली में 'पगड़ी संभाल जटा' के गीत गूंजने लगे। सरकार ने तुरन्त लाला लाजपतराय तथा अजीतसिंह को देश से निर्वासित करके बर्मा की माण्डले जेल में भेज दिया। देश में सरकार के विरूद्ध जनता ने इसका प्रबल विरोध किया जिसके फलस्वरूप सरकार को अपना यह फैसला वापस लेना पड़ा। माण्डले में वे लगभग छः महीने बिल्कुल अकेले रहे तथा उस समय उन्होंने भारत का इतिहास (प्रथम भाग), महाराजा अशोक, शिवाजी तथा भारतीय राजनीति का क ख ग रचनाएं लिखीं। इनके द्वारा लिखे गए कुछ अन्य ग्रंथ हैं 'दि आर्यसमाज', 'महर्षि दयानन्द', 'पण्डित गुरूदत्त विद्यार्थी', 'योगिराज श्रीकृष्ण', 'मैजिनी', 'गेरीबाल्डी' तथा 'दुःखी भारत' आदि। स्वदेश लौटने पर उनका भरपूर स्वागत हुआ तथा लाला जी और भी अधिक तीव्रगति के साथ क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय हो गए। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एक प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य बनकर लाला जी पुनः इंग्लैंड गए तथा वापसी का वीज़ा न मिलने की दशा में वहीं से जापान एवं अमेरिका आदि देशों में जाकर भारत की स्वतंत्रता के लिए अपना प्रबल पक्ष प्रस्तुत किया। इसी काल में इन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं तथा इंडियन होमरूल लीग की स्थापना भी की और 'तरूण भारत' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। 20 फ़रवरी सन् 1920 को ये पुनः भारत लौटे। यहां आते ही पुनः क्रांतिकारी गतिविधियों में लग गए। उन्होंने 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' की स्थापना की और उर्दू में 'वन्दे मातरम्' नामक एक दैनिक पत्र निकाला। गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। सरकारी शिक्षण संस्थानों तथा अदालतों का बहिष्कार किया गया, विदेशी वस्त्रों को तयाग कर चरखा और खादी का प्रचार किया गया, शराब के विरूद्ध आन्दोलन किया गया। इन्हीं दिनों कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ

जिसकी अध्यक्षता लाला जी ने की। इन समस्त गतिविधियों में लाला जी की सक्रियता को देखते हुए सरकार द्वारा इन्हें पुनः बन्दी बना लिया गया। जेल में इनका स्वास्थ्य बिगड़ गया तथा अठारह महीने के बाद ही सरकार को इन्हें जेल से रिहा कर देना पड़ा।

जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है कि लाला जी का व्यक्तित्व बहुमुखी था इसलिए उनके कार्य भी बहुआयामी रहे। उन्होंने लाहौर में नेशनल कॉलेज खोला तथा टी.बी के रोगियों के लिए अपनी माता जी के नाम से गुलाब देवी अस्पताल की स्थापना की। वे भारत का चहुंमुखी विकास चाहते थे। आर्थिक विकास के लिए इन्होंने बैंक का होना अनिवार्य समझा तथा लाला मुल्कराज जी की इच्छानुसार पंजाब नेशनल बैंक की स्थापना की गई जिसके लाला जी कुछ काल तक निदेशक भी रहे। सन् 1896 में उतरी भारत तथा 1899 में राजपूताना में जब भीषण दुर्भिक्ष की ज्वाला धधकी तो इन्होंने स्वयं को पूर्णरूप से सेवाकार्य में झोंक दिया। उसके बाद जब सन् 1905 में कांगड़ा में भूकम्प आया तो वहां भी लाला जी सेवा कार्य के लिए पहुंच गए। इसी प्रकार सन् 1907 एवं 1908 में उड़ीसा, मध्यप्रदेश और संयुक्त प्रान्तों में अकाल पड़ा तो तुरन्त अकाल पीड़ितों की सहायता के प्रति स्वयं समर्पित कर दिया। जाति-पाति तथा छुआछूत को आप समाज के माथें का कलंक मानते थे अतः आपने इस दिशा में भी अपनी सक्रिय सेवाएं अर्पित कीं। कितने ही अनाथ बच्चों को आश्रय दिया। सन् 1912 में गुरूकुल कांगड़ी में हुए अछूतोद्धार सम्मेलन के आप ही अध्यक्ष थे। इस कार्य के लिए उस समय आपने अपनी ओर से चालीस हज़ार रूपये की राशि भी प्रदान की थी। लाला जी हिन्दू मुस्लिम एकता के सदा पक्षधर रहे मगर गांधी तथा कांग्रेस की तुष्टिकरण की नीति को ये इस एकता में सबसे

बड़ा व्यवधान मानते थे तथा इस परिपाटी से सन्तुष्ट होकर इन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द तथा मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं के साथ मिलकर 'हिन्दू महासभा' का गठन किया। कलकत्ता में सन् 1925 में महासभा का एक बहुत बड़ा अधिवेशन किया गया जिसकी अध्यक्षता माननीय लाला जी ने ही की थी। इस महासभा का गठन इसी भावना के साथ किया गया था कि तुष्टिकरण के कारण हिन्दू और मुसलमान में जो दुराव पैदा हो रहा है वह रूक जाए तथा सरकार किसी सम्प्रदाय विशेष को प्रसन्न करने के लिए ऐसे अनुचित फैसले न ले सके जो आगे चलकर देश के लिए घातक सिद्ध हों। सन् 1924 में लाला जी कांग्रेस के अन्तर्गत ही बनी स्वराज पार्टी में शामिल हो गए तथा सैण्ट्रल असेम्बली के सदस्य चुन लिए गए। इसी बीच श्री मोतीलाल नेहरू से इनके कुछ मतभेद हो गए तथा इन्होंने नेशनलिस्ट पार्टी का गठन किया और असैम्बली में पहुंच गए।

अंग्रेज़ सरकार भारतीय जनचेतना को किसी न किसी प्रकार छिन्न-भिन्न करने तथा उन पर नया से नया अत्याचार करने के लिए तरह-तरह के कृत्य करती रहती थी। साईमन कमीशन का गठन भी एक ऐसा ही कृत्य था। नवम्बर 8, 1927 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भारत के भावी संविधान पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक आयोग का गठन किया जिसका अध्यक्ष जॉन साईमन था। इस आयोग में एक भारतीय नहीं था। इससे देशवासियों का क्रुध होना स्वाभाविक था अतः साईमन कमीशन का प्रबल विरोध करने की योजना बनी। यह आयोग 30 अक्टूबर, 1930 को लाहौर पहुंचा। लाला जी के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा विरोध जुलूस निकाला गया। काली झण्डियों से आयोग का विरोध किया गया तथा 'साइमन गो बैक' के गगनभेदी नारों से समूचा लाहौर गूंज उठा। सरकार ने धारा 144 लगा दी मगर जनता का यह समुद्र नारे लगाता

हुआ स्टेशन की ओर बढ़ा। जैसे ही जुलूस स्टेशन पर पहुंचा तो शान्तिपूर्ण ढंग से विरोध प्रदर्शित करते हुए इस जुलूस पर क्रूरता से लाठियां बरसाई गईं। लाला जी विशेष रूप से उनके निशाने पर थे। उन्हें लाठियों से पीट-पीट कर बुरी तरह से घायल कर दिया गया। सायंकाल एक विरोध सभा हुई जिसमें लाला जी ने किसी घायल सिंह की तरह गरज कर कहा, हमारे सीने पर लगी एक-एक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न में कील बनकर लगेगी।' मेरे ऊपर हमला सोची समझी हुई योजना से हुआ है। हमने इस कायरतापूर्ण आक्रमण का अहिंसा और शान्ति से ब्रिटिश सरकार से अपने देश को आज़ाद कराके बदला लेना है। लेकिन मैं अंग्रेज़ सरकार को चेतावनी देना चाहता हूं कि अगर खून-खराबे वाली क्रांति इस देश में शुरू हुई तो इसकी ज़िम्मेदारी अंग्रेज़ी सरकार पर होगी। अगर सरकार के अफ़सर इस तरह के व्यवहार करते रहे तो नौजवान हमारे हाथ से निकल जाएंगे और स्वराज्य प्राप्ति के लिए जो उनके दिल में आएगा करने लगेंगे। मैं नहीं जानता कि मैं वह दिन देखने के लिए ज़िंदा रहूंगा या नहीं लेकिन जीता रहा या मर गया अगर सरकार के व्यवहार से मजबूर होकर नौजवान भड़क उठे और उन्होंने खूनी क्रांति का रास्ता अपनाया तो मेरी आत्मा का आशीर्वाद उनके साथ होगा.....' घायल लाला जी सतरह दिनों तक जीवन और मृत्यु के बीच झूलते रहे मगर इस दौरान भी वे संघर्षरत रहे। अन्ततः सतरहवें दिन अर्थात् 17 नवम्बर, 1928 को प्रातः काल सात बजे त्रैसठ वर्ष की आयु में इस महान स्वतंत्रता सेनाना ने सदा-सदा के लिए अपनी आंखें बन्द कर लीं।

लाला जी की अत्येष्टि के लिए अपार जन-समूह उमड़ पड़ा। समस्त जनता भारत मां के इस अमर सपूत को अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी श्रद्धांजलि दे रही थी। फूलों की चारों ओर से इतनी वर्षा हो रही थी कि लोग आश्चर्यचकित थे कि लाहौर

में इतने फूल कहां से आ गए। लाला जी के शहीद हो जाने के बाद स्वतंत्रता संग्राम ने एकदम तेज़ी पकड़ ली। भगतसिंह आदि कुछ राष्ट्रभक्त युवकों ने उसी दिन पापी सांडर्स की हत्या करने की प्रतिज्ञा की जिसने विशेष रूप से लाला जी की छाती पर लाठियों के प्रहार किए थे। युवकों ने अपनी इस प्रतिज्ञा को शीघ्र ही कार्य रूप भी दे दिया। उसके बाद क्रांति की लहर इतने वेग से चली की लाला जी की घोषणा अक्षरशः सिद्ध हुई, उनके शरीर पर पड़ी लाठी की चोटें वास्तव में ही अंग्रेज़ी राज्य के कफ़न की कीलें बनीं। लाला जी जीवन की सार्थकता इसी में समझते थे कि व्यक्ति अपने शरीर से देश और धर्म के कुछ कार्य कर जाए अन्यथा व्यक्ति का जीना या मर जाना दोनों ही जैसे एक समान हैं। उन्होंने धर्म, राष्ट्र और समाज की बलिवेदी पर स्वयं को आहुत कर दिया। जीवन की सार्थकता के बारे में उनकी एक उक्ति है—'अगर कोई ऐसा आदमी है जो अपनी जाति तथा देश की सेवा अपना कर्तव्य नहीं समझता तो उससे कह दो कि तुम्हें मनुष्य का शरीर तो मिला है, किन्तु अभी तुम मनुष्य नहीं बन पाए।' लाला जी की मृत्यु पर अनेक लोगों ने अपनी श्रद्धाजंलियां दीं। इस अवसर पर गांधी जी ने कहा— 'लाला जी तो एक संस्था थे। अपने यौवन के समय से ही उन्होंने देशभक्ति को अपना धर्म बना लिया था और उनके देश-प्रेम में संकीर्णता न थी। वे अपने देश से इसलिए प्रेम करते थे कि वे संसार से प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता से भरपूर थी.... । उनकी सेवाएं विविध थीं। वे बड़े ही उत्साही, समाज-सुधारक और धार्मिक थे....ऐसे किसी भी आन्दोलन का नाम लेना असंभव है जिसमें लाला जी सम्मिलित न थे। सेवा करने की भूख उनकी सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होंने शिक्षण संस्थएं खोलीं, वे दलितों के मित्र बने। जहां कहीं दुःख-दारिद्रय होता वे वहीं दौड़ते थे..... ।'

6. अरविन्द घोष

योगीराज श्री अरविन्द जी का जीवन हमें अत्यन्त विलक्षण इस रूप में लगता है कि उनका लालन पालन पूरे ठाट बाट तथा पाश्चात्य सभ्यता के वातावरण में हुआ, उच्च शिक्षा प्राप्त की और क्रांतिकारी के रूप में स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े तथा अन्ततः आन्तरिक चेतना का विकास करके योगीराज के पद को सुशोभित किया। हमें इन बातों में विरोधाभास लग सकता है मगर उस परमात्मा की व्यवस्था में किस आत्मा का विकास किन राहों या पगडण्डियों से गुजरकर होना है यह स्वयं परमात्मा ही जानते हैं। श्री अरविन्द जी का जन्म 15 अगस्त, 1872 में कलकत्ता के एक अति धनाढ्य परिवार में हुआ। उनके पिता सरकारी उच्चाधिकारी, कट्टर ब्रह्मसमाजी और उस समय के बहुत से भारतीयों की तरह पाश्चात्य सभ्यता के प्रेमी थे। भारतीय भाषाओं, पहरावे तथा खान पान से उन्हें प्रबल घृणा थी। उन्होंने अपने इस बालक को भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से दूर रखने के उद्देश्य से ही 7-8 वर्ष की आयु में ही इंग्लैंड भेज दिया था। उन्हें क्या मालूम था कि उनका यह बच्चा पूर्णतय भारतीय संस्कृति और सभ्यता का पोषक बनेगा। श्री अरविन्द जी लगभग चौदह वर्ष इंग्लैंड में रहे। उस समय भारतीय छात्रों में आई.सी.एस. परीक्षा पास करने की बहुत होड़ रहती थी मगर कोई प्रतिभाशाली युवक ही इस प्राप्ति को हासिल कर सकता था। अरविन्द जी ने अच्छे अंकों में यह परीक्षा उत्तीर्ण करके एक उदाहरण प्रस्तुत किया। हो सकता है भारत में रहते हुए भारत वर्ष को स्वतंत्र कराने की भावना उनमें बलवती न होती मगर प्रवासी भारतीयों ने स्वतंत्रता को लेकर जो गतिविधियां चला रखी थीं उसका प्रभाव श्री अरविन्द

जी पर भी पड़ा। कैम्ब्रिज की छात्र सभा का मंत्री होने के नाते आपने लन्दन में कई क्रांतिकारी भाषण दिए तथा इस बात पर बल दिया कि हमें स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रांति करने से भी परहेज़ नहीं करना चाहिए। अंग्रेज सरकार उनके इस प्रकार के भाषणों से काफ़ी घबरा गई तथा उन्हें सिंविल सर्विस से वंचित कर दिया।

सन् 1893 में जब श्री अरविन्द भारत लौटे तो सबसे पहले वे बड़ौदा के अतिरिक्त फ्रैंच, जर्मन, इतालवी, यूनानी तथा लेटिन भाषाएं सीखीं तथा भारत में आकर संस्कृत, मराठी, गुजराती और बंगला भाषाओं का भी अध्ययन किया। भारतीय भाषाओं का ज्ञान हो जाने पर उन्होंने वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों का पारायण पूरे मनोयोग से किया। इससे उनकी देशप्रेम की भावना भी और अधिक प्रबल हुई तथा लेखन और भाषण के माध्यम से वे भावनाएं बाहर निकलने लगीं। आपने स्वयं भी देशभक्ति के साहित्य की रचना की। बम्बई से प्रकाशित होने वाली 'इन्दु प्रकाश' नामक पत्रिका में छपने वाले आपके क्रांतिकारी लेखों ने तो जैसे तहलका ही मचा दिया। उन्हीं दिनों बंग विभाजन हुआ। बस अब तो श्री अरविन्द जी खुले रूप से राजनीति में आ गए। उन्होंने बंगाल से 'युगान्तर' दैनिक पत्र निकाला। विपिन चन्द्र पाल जी के अंग्रेजी मासिक पत्र 'वन्दे मातरम्' में भी वे लिखते थे। सन् 1906 में कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वे उनकी तुष्टिकरण की नीति से सहमत नहीं थे इसलिए अधिवेशन से कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने साफ़ शब्दों में घोषणा कर दी थी कि अंग्रेज़ी प्रभाव से पूर्णतः मुक्त स्वशासन ही देश का लक्ष्य हो सकता है। इसी भावना से प्रेरित होकर वे सशस्त्र क्रांति के पक्षधर बन गए। उन्होंने क्रांतिकारियों से मिलकर सक्रियता से कार्य किया मगर सन्

1908 में अपने अन्य क्रांतिकारी साथियों के साथ पकड़ लिए गए तथा एक वर्ष तक ये जेल में रहे। अन्ततः 1909 में इन्हें रिहा कर दिया गया मगर श्री अरविन्द जी ने जेल से छूटते ही कर्मयोगी तथा धर्मनायक पत्रों के माध्यम से पुनःक्रांतिकारी लेखों के द्वारा अंग्रेज़ सरकार के विरूद्ध बिगुल बजा दिया। लेकिन जेल जीवन और विशेष रूप से उन पर चलाए गए मुकदमें की कार्रवाई के दौरान उनके भीतर एक अजीब प्रकार की आध्यात्मिक चेतना ने जन्म लिया। उनके अनुसार उन्हें लगा जैसे परमात्मा स्वयं ही उनकी सहायता करने के लिए आ गए हों। यह आध्यात्मिक विचारधारा किसी प्रकार की क्रांति या देश सेवा से विमुखता नहीं थी बल्कि उनका आध्यात्म भी समग्र क्रांति का एक रूप था। इसी आध्यात्मिक क्रम में वे 4 अप्रैल, 1910 में एक तरह से राजनीति से सन्यास लेकर पाण्डिचेरी में चले गए और गहन साधना में लीन हो गए। साधना के मार्ग पर जाने से पूर्व उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को जो पत्र लिखे हैं उन्हें पढ़ने से उनका लक्ष्य परिलक्षित होता है। पाण्डिचेरी में उनके साथ बहुत से अनुयायी निरन्तर जुड़ते चले गए और वहां का आध्यात्मिक वातावरण एक विशाल स्वरूप धारण करता चला गया। वहां उनका मुख्य सहयोग श्री मां ने दिया जो स्वयं एक आध्यात्मिक महिला थी। श्री मां एक फ्रांसीसी महिला थी और 1914 से ही आश्रम में रहने लगी थी। श्री अरविन्द के बाद आप ही आश्रम के साधकों की पथप्रदर्शिका बनीं। अपने साधनामय जीवन में श्री अरविन्द जी अधिकतर मौन और एकान्तवासी ही रहते थे। वे केवल दो बार ही अपने अनुयायियों को दर्शन देते थे, एक अपने जन्म दिवस 15 अगस्त को और दूसरे श्री मां जी के जन्म दिवस पर। वे एक अच्छे लेखक भी थे। अतः उन्होंने 'आर्य' और 'अदिति'

नामक पत्र अंग्रेज़ी और हिन्दी में निकाले। अपनी गहन साधना सेउन्हें अनेक प्रकार की उपलब्धियां अर्थात् आध्यात्मिकता की अन्त चेतना प्राप्त हुई। जब उन्होंने 5 दिसम्बर 1950 को महाप्रयाण किया तो लगभग 25 दिन तक यह निर्णय नहीं हो पाया कि वे समाधि में हैं या कि इनका देहावसान हो चुका है।

उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय पर थां। भौतिक जगत मिथ्या नहीं बल्कि यह अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधन रूप हैं, यह उनकी विचारधारा थी। उनके अनुसार सक्रिय कर्मठता से ही व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। उनका यह भी मानना था कि मानव जन्म हमें अपने क्रमिक विकास के लिए ही मिला है तथा व्यक्ति का चरम विकास परमात्मा के सानिध्य को प्राप्त कर लेने में ही है। आर्यत्व और वेद के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा रही। वेद के प्रति उनका भी यही मत रहा कि वेद हमें भौतिक और आध्यात्म का समन्वय सिखाता है। वे व्यक्ति को स्वयं अपना निर्माता बनने की प्रेरणा देते थे। मानव को अपने भीतर छुपी हुई अपार क्षमताओं को तलाशना चाहिए और बड़े से बड़े लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए। उनकी प्रेरणा यही थी कि व्यक्ति स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है और भाग्य को उजागर करने के लिए बैठे हो तो खड़े हों जाओ तथा खड़े हो तो चल पड़ो। अपने आपको घड़ो! जीवन में से घड़कर उसे तैयार करो। विचारक बनो पर साथ ही करने वाले भी बनो, परमात्मा के सेवक बनों पर साथ ही प्रकृति के स्वामी भी बनो। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका आध्यात्म एक तरफ़ा नहीं था बल्कि वह व्यक्ति के चतुर्दिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने वाला था। इसी प्रकार उसमें देश प्रेम का समावेश भी हमें दिखाई देता

है। उनके अनुसार राष्ट्रीय होने का अभिप्राय एक स्थान पर रूक जाना नहीं है। बल्कि भूत की संजीवनी शक्ति को ग्रहण करके उसे वर्तमान की धारा में डाल देना ही वास्तव में पुनरूद्धार और नव निर्माण का सबसे अधिक शक्तिशाली उपाय है। उनका अध्यात्म व्यकित के सत्य के साथ संयुक्त कर देने वाला था। फिर सत्य के पक्ष में रहकर व्यक्ति जो भी काम करेगा वह अनिवार्य रूप से धर्म ही होगा तथा व्यक्ति समाज और देश के लिए उपयोगी ही होगा। वे परमात्मा से प्रेरणा लेकर व्यक्ति के चरम विकास में आस्था रखते थे तथा इसे ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य भी मनते थे। सत्य एक सरल सी वस्तु लगती है फिर भी अत्यन्त कठिन है। सत्य ही वैदिक शिला का मूल मंत्र था। आत्मा में सत्य, दृष्टि में सत्य, इरादे में सत्य और क्रिया में सत्य। क्रियात्मक सत्य, आर्यत्व एक आन्तरिक निष्कपटता और दृढ़ सत्य हृदयता, स्पष्टता और वाणी तथा कर्म में स्फुट उदात्तता, यह प्राचीन नैतिकता में स्वभाव निहित ही था। यह एक शुद्ध और अविकृत शक्ति का रहस्य है और इस बात का चिन्ह है कि मानव प्रकृति से बहुत परे नहीं हट गया है। यही परमात्मा के पुत्र, 'दिवस्पुत्र' का और सत्व है उस के सच्चे पुत्र होने का प्रमाण है। श्री अरविन्द जी के अनुसार ऐसा व्यक्ति ही दिव्य कर्म के साथ जुड़कर अपने आपको सार्थक बना सकता है। उनके अनुसार दिव्यकर्म में सामाजिक कम भी आ जाते हैं। देश सेवा, समाज सेवा सब कुछ दिव्य कर्म के ही अंग हैं परन्तु जब किसी महान पुरुष में मानव कर्म तथा दिव्य कर्म का विरोध उठ खड़ा हो, समाज एक बात कहता है, भगवान दूसरी बात कहता हो,....मेरी इच्छा एक है.....परमात्मा की इच्छा दूसरी है, तब हमें अपनी इच्छा.....समाज की इच्छा को, भगवान की इच्छा की बलिवेदी पर न्यौछावर कर देना

होगा, यही उनके दिव्यकर्म का मर्म है और इसी प्रकार के दिव्य कर्म में मैं कर्ता नहीं रहता...मेरी कामना नहीं रहती. ...ममता नहीं रहती...कामता स्वतः सिद्ध हो जाती है।' अपनी इसी भावना को ही उन्होंने यज्ञ के साथ जोड़ते हुए कहा है—'परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण इस लिए नहीं होता क्योंकि पुरुष अपने कर्मों का कर्ता अपने आपको ही जानता है और यह नहीं देख पाता कि जब तक के सारे कर्म जिनमें उसके आन्तर और बाह्य कर्म भी शामिल हैं, उसके अपने कर्म नहीं, एक ही विश्व प्रकृति द्वारा होने वाले कर्म हैं, और कुछ भी नहीं। वह अपने आप को ही सब कर्मों का भोक्ता समझता है और यह कल्पना करता है कि प्रकृति मेरी व्यष्टिगत इच्छाओं को मानें और तृप्त करे। उसे यह नहीं सूझता कि उसकी इच्छाओं को तृप्त करने से प्रकृति का कुछ भी वास्ता नहीं...प्रकृति को जिस इच्छा का पालन करना है वह महती विश्वव्यापिनी इच्छा है, उसकी अपनी इच्छा भी उसकी नहीं, ब्रह्म की ही इच्छा है और प्रकृति हर वस्तु को प्रतिक्षण भगवान को यज्ञ के रूप में अर्पण कर रही है। इसलिए उन्होंने यज्ञ को निष्काम कर्म के साथ जोड़ा है।

'दिव्य कर्म' के समान ही उन्होंने दिव्य जन्म के बारे में भी अपने विचार रखे हैं। उनका कथन है कि आज तक सृष्टि विकास की प्रक्रिया में से गुजरते गुजरते 'मनस्तत्व' तक पहुंची है परन्तु जैसे, जड़ प्रकृति से शरीर तत्व का विकास हुआ, जैसे शरीरत्व के बाद 'प्राण तत्व' का विकास हुआ, जैसे प्राण तत्व के बाद 'मनस्तत्व' का विकास हुआ, वैसे यह विकास यहीं रूक जाने वाला नहीं है। यह विकास आगे होगा और इस विकास में जो अगला तत्व प्रकट होगा उस तत्व का नाम होगा 'अतिमानस तत्व'। इस अतिमानस का किसी व्यक्ति में उतर आना ही अवतरण है...अवतार है...

दिव्य जन्म है। अतिमानस तत्व की प्राप्ति के लिए मनस्तत्व को पांच स्तरों से गुज़रना होता है। पहला स्तर है साधारण मानसिक शक्ति। इस स्तर के लोग मन के साधारण स्तर पर रहते हैं, ऊंची उड़ान नहीं ले सकते। इससे आगे वे लोग आते हैं जो उच्चतर मानसिक स्तर के हैं। इन्हें 'उच्चतर मन' कहा जा सकता है। ऐसे लोग भले ही लक्ष्य तक न पहुंचें मगर उन्हें सत्य एकदम ठीक ठीक दिख पड़ता है तथा वे तीसरे स्तर अन्तःप्रज्ञा से होते हुए चौथी अवस्था 'आलोकित मन' को प्राप्त होते हैं। पांचवां स्तर 'अधिमानस' का है और श्री अरविन्द का कहना है कि इससे आगे जो कुछ भी है वह अतिमानस तत्व ही है। उनका मानना है कि तब हमारा यह शरीर, यह मन सर्वथा बदल जाएगा, रूपान्तरिक हो जाएगा जैसे प्राण तत्व के आविर्भाव से प्राणी का शरीर कुछ का कुछ बन गया, जैसे मनस्तत्व के आविर्भाव से व्यक्ति का शरीर पशु पक्षी से भिन्न होकर रूपान्तरित हो गया, वैसे अतिमानस के आविर्भाव से यह शरीर ऐसा नहीं रहेगा बल्कि दिव्य हो जाएगा.....मन भी दिव्य हो जाएगा। व्यक्ति सुख-दुःख, राग-द्वैष, जन्म-मरण आदि के सन्तापों से मुक्त होकर परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करेगा। उपनिषदों में शरीर, प्राण, मन तथा अतिमन के विकास की इस प्रक्रिया को अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और फिर आनन्दमय कोश कहा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री अरविन्द जी के दर्शन में हमें आध्यात्म और भौतिक का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। उनका मुख्य सन्देश यही है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को क्रम से इस प्रकार उन्नति की ओर ले जाए कि वह अपना विकास तो करे ही मगर साथ ही उसका दिव्य जीवन संसार, देश और आध्यात्म के काम आए। व्यक्ति की

इस उच्चावस्था को ही उन्होंने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया है। उन्होंने ब्रह्म की दो प्रकृतियां मानते हुए कहा है कि अपरा तथा परा ये ब्रह्म की प्रकृतियां हैं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश ये पंच महाभूत तथा मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ तत्व उन्होंने अपरा प्रकृति के अन्तर्गत रखे हैं। ब्रह्म की परा प्रकृति है उसका चैतन्यमय, अखण्ड, अनादि अनन्त रूप। श्री अरविन्द जी ने अपरा को साधन तो माना मगर व्यक्ति का साध्य परा प्रकृति को प्राप्त करना ही बताया है। वे कहते हैं कि जीव न जाने कितने युगों से अपने मित्र परमात्मा से बिछुड़ा हुआ है। जब से बिछुड़ा है तभी से दुःखी है.. ..अतृप्त है। इसे तृप्ति तभी मिलेगी जब उस मित्र से इसका मिलन होगा। इसी तृप्ति और मिलन के लिए हमें बार बार जन्म मरण के चक्कर में पड़ना पड़ता है। यदि व्यक्ति मुक्ति चाहता है तो भौतिकता को साधन के रूप में प्रयोग करके उस साध्य के आनन्द को प्राप्त करना होगा। इस प्रकार व्यक्ति के चतुर्दिक विकास और उत्थान का मार्ग प्रशस्त करने वाला दर्शन उन्होंने हमारे समक्ष रखा है। इसे व्यवहारिक स्तर पर जीने और विकसित करने की ज़रूरत है। फिर व्यक्ति का जीवन भी दिव्य हो जाएगा और उसके कर्म भी। दिव्यता की प्राप्ति ही तो परमात्मा को प्राप्त कर लेना है।

7. भाई परमानन्द

सिक्खों के नौवें गुरू तेगबहादुर जी जब गद्दी पर बैठे तो उन्होंने बाबा परागा के पोते मतिदास को अपना दीवान नियुक्त किया। औरंगज़ेब के हुक्म पर गुरू तेगबहादुर जी को अपना बलिदान देना पड़ा तथा उससे चार दिन पूर्व उनके दीवान मतिदास के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए थे। जब गुरू गोविन्द सिंह जी गद्दी पर आसीन हुए तो उन्होंने आनन्दपुर में एक विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि ब्राह्मण वंश के मतिदास जी के वंश का कोई व्यक्ति यदि यहां पर उपस्थित हो तो वह सामने आ जाए ताकि मैं उसे अपना दीवान बनाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूं। इस घोषणा को सुनकर उस वंश के गुरूबख्श सिंह उनके पास आ गए। गुरू गोविन्दसिंह ने उन्हें अपना मंत्री नियुक्त किया तथा उन्हें गले से लगाते हुए कहा– 'इनका और हमारा रक्त धरती में मिलकर बहा है, इसलिए यह हमारे भाई हैं। अब इस वंश को भाई नाम से पुकारा जाया करेगा। इसी तेजस्वी तथा बलिदानी वंश में 4 नवम्बर, 1876 को करियाला में भाई ताराचन्द जी के घर भाई परमानन्द जी का जन्म हुआ। इनकी माता का नाम मथुरादेवी था। भाई जी कुछ बड़े हुए तो चकवाल के स्कूल में इनकी पढ़ाई आरंभ हुई। जब ये अभी मात्र चौदह वर्ष के ही थे कि इनकी माता जी का देहान्त हो गया।

भाई जी बचपन से ही बहुत प्रतिभा सम्पन्न थे। अपनी प्रतिभा के कारण स्कूल के विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच इनका सम्मान होने लगा। उन दिनों जब पंजाब में आर्यसमाज का बहुत जोर था तथा भाई जी भी खण्डन-मण्डन से सम्बंधित ट्रैक्ट पढ़कर पक्के आर्यसमाजी बन गए। स्कूली अध्ययन की पुस्तकों से अधिक ये सत्यार्थप्रकाश तथा पण्डित लेखराम जी के लेखों को पढ़ने में अधिक रूचि लेते थे। मिडिल की परीक्षा

पास करने के बाद उन्होंने डी.ए.वी. स्कूल में प्रवेश लिया। यहां वे उपदेशक कक्षा में भी भाग लेते थे जहां वेद तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों की शिक्षा भी दी जाती थी। जब तक इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की तब तक इनके हृदय में वैदिक मिशनरी बनने की भावना भी पक्की हो चुकी थी। मैट्रिक करने के बाद ये कुछ दिन बागवान पुरा के प्राइमरी स्कूल के मुख्याध्यापक रहे, फिर इन्हें डी.ए.वी. स्कूल के छात्रावास का सहायक अधीक्षक बनाया गया। इन्होंने दयानन्द कालेज के पक्ष में व्यक्तिगत रूप से सब जगह जा-जाकर प्रचार किया तथा इसी बीच बी.ए. की परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली। हालांकि इनकी इच्छा डाक्टर बनकर आर्यसमाज की सेवा करने की थी मगर बी.ए. करने के बाद ये एंग्लो संस्कृत स्कूल के मुख्याध्यापक बन गए। वहां एम.ए. करने का विचार बना तथा इन्होंने 1902 में पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा पास कर ली। उसके बाद इन्होंने बदले में मात्र पच्चहत्तर रूपये लेने स्वीकार करके डी.ए.वी. की आजीवन सदस्यता ग्रहण कर ली। इसी बीच इनका विवाह रावलपिंडी के देहरा बख्शिाया के ज़मींदार रायज़ादा किशन दयाल की सुपुत्री भागसुधि से हुआ।

भाई जी डी.ए.वी. कालेज में इतिहास के प्राध्यापक थे मगर इसके साथ-साथ वे पूरे भारत में भ्रमण करके आर्यसमाज का सन्देश भी जनता तक पहुंचाते रहे। वे एक अच्छे वक्ता के रूप में प्रतिष्ठापित हो गए तथा इसी बीच पूर्वी अफ्रीका के लोगों ने किसी अच्छे उपदेशक को अफ्रीका भेजने की मांग की तो भाई जी को वहां पर भेजा गया। मई 1905 को उन्होंने अफ्रीका के लिए प्रस्थान किया तथा छः दिन की कठिन यात्रा के बाद वे अफ्रीका पहुंचे। कुछ दिन लामू में रहने के बाद वे 6 अगस्त, 1905 को मोम्बासा पहुंचे। कुछ दिन वे नैरोबी में भी रहे। अफ्रीका में रहकर भाई जी ने लोगों में अपने ओजस्वी भाषणों के द्वारा धार्मिक और राष्ट्रीयता की भावना को उद्‌बुद्ध

किया। उनके भाषणों को सुनने के लिए हज़ारों भारतीय तो आते ही थे मगर साथ ही गोरे लोग भी उन्हें सुनने के लिए पर्याप्त संख्या में आते थे। इसी प्रचार कार्य को करते-करते जब वे जोहान्सबर्ग पहुंचे तो उनका स्वागत करने के लिए उन दिनों अफ्रीका में रह रहे गांधी जी भी आए थे।

लाला लाजपतराय जी उन दिनों लन्दन में स्वतंत्रता के पक्ष में प्रचार कर रहे थे उन्होंने भाई जी को लन्दन आने के लिए लिखा तथा उनके निमंत्रण पर भाई जी लन्दन चले गए और वहां महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के परम शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित इण्डिया हाऊस पहुंच कर उनका लाला हरदयाल, सावरकर आदि से भी मिलना हुआ। श्री वर्मा ने वहां पर 'होम रूल' की स्थापना की थी। जब 4 मई, 1906 को भारत में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी को 'वन्दे मातरम्' गीत गाने पर गिरफ्तार किया गया तो लीग द्वारा लन्दन में इसके विरोध में एक विशाल जनसभा का आयोजन किया गया। कांग्रेस के नरम दल के नेताओं ने इसमें भाग नहीं लिया मगर भाषण देने वालों में भाई परमानन्द जी तथा विट्ठल भाई पटेल जी प्रमुख थे। वहां रहते हुए भाई जी ने अंग्रेज़ों द्वारा भारतवर्ष के सम्बन्ध में लिखे गए ग़लत इतिहास की पोल खोलने के लिए 'भारत में ब्रिटिश राज्य का उद्भव' नामक शोधग्रन्थ लिखा जिसे संकीर्णता के कारण एंग्लो-इण्डियन के सदस्यों ने अस्वीकार कर दिया।

सन् 1907 में 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पचास वर्ष पूरे हुए तो लन्दन के समाचार पत्रों में यह शंका जताई जाने लगी कि जिस भान्ति 'प्लासी युद्ध' के सौ वर्षों के बाद विद्रोह हुआ था, उसी प्रकार इस बार भी अवश्य विद्रोह होगा। इस आशंका के मध्य-नज़र सरकार की ओर से दमनचक्र आरम्भ हो गया। उधर पंजाब में किसानों में क्रांति की भावना पैदा करने के आरोप में लाला लाजपतराय और अजीतसिंह को

गिरफ्तार करके माण्डले जेल भेज दिया गया। लन्दन में एक सभा हुई जिसमें भाई जी ने इस दमनचक्र के विरूद्ध आवाज़ उठाई। सन् 1907 में ही भाई जी भारत वापस आ गए। अब अंग्रेज़ सरकार की इन पर सदा कड़ी दृष्टि रहने लगी। इनके घर की तलाशी ली गई और बाद में उन्हें 10 मार्च, 1920 को गिरफ्तार कर लिया मगर फिर पन्द्रह हज़ार रूपए की ज़मानत पर छोड़ भी दिया गया। भाई जी औषधी विज्ञान का अध्ययन करने के लिए अमेरिका चले गए। वहां उनकी भेंट अपने मित्र लाला हरदयाल से हुई जो 'पोर्ट दि फांस' नामक द्वीप में व्यक्तिगत कठोर साधना कर रहे थे। भाई जी ने उन्हें साधना छोड़कर पुनः देशसेवा के क्षेत्र में कार्य करने के लिए प्रेरित किया। अपने इसी प्रवास में उन्होंने करतारसिंह सराभा को भी प्रेरणा दी। औषधी निर्माण का कोर्स पूरा करके वे दिसम्बर, 1913 को बम्बई पहुंचे। अगस्त, 1914 में प्रथम विश्व युद्ध आरंभ हो गया। भाई परमानन्द जी तथा गदर पार्टी के क्रांतिकारियों द्वारा एक बैठक बुलाई गई। इस बैठक में करतारसिंह सराभा, पण्डित परमानन्द, रासबिहारी बोस, शचीन्द्र नाथ सान्याल तथा गणेश पिंगले आदि क्रांतिकारियों ने भारतवर्ष को स्वतंत्र कराने के लिए सन् 1857 जैसी योजना बनाई। तय हुआ कि 21 फ़रवरी, 1915 को विभिन्न स्थानों पर एक साथ विद्रोह करके देश को स्वतंत्र करा लिया जाए। सेना में बग़ावत कराने के लिए इन क्रांतिवीरों का आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, लखनऊ, लाहौर और फ़िरोज़पुर आदि छावनियों से भी सम्पर्क हो चुका था। इधर क्रांतिकारियों ने बग़ावत की पूरी तैयारी कर ली। शस्त्र आदि का प्रबन्ध हो गया। क्रांतिकारियों में अपार उत्साह था मगर क्रांति का बिगुल बजने से पूर्व ही ग़दर पार्टी के ही एक ग़द्दार कृपालसिंह ने लालच में आकर पुलिस को ख़बर देकर सारी योजना का भण्डाफोड़ कर दिया। पुलिस का दमनचक्र चला तथा खोज-

खोजकर क्रांतिवीरों को पकड़ा जाने लगा। इस षडयंत्र में कुल 61 अभियुक्तों को शामिल किया गया और इस षडयंत्र के नेता करतार सिंह सराभा, भाई परमानन्द, विष्णु गणेश पिंगले, जगत सिंह, हरनाम सिंह करार दिए गए। न्याय का नाटक चला और भाई परमानन्द जी सहित चौबीस लोगों को फांसी की सज़ा सुनाई गई। बाद में 15 नवम्बर, सन् 1915 को भाई जी सहित चौबीस में से सतरह व्यक्तियों की फांसी की सजा निरस्त कर दी गई। भाई जी को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। काले पानी की कारावास का यह जीवन उनके लिए बहुत ही कष्टदायक था। मगर भाई जी ने बड़े साहस और धैर्य के साथ इस जीवन को काटा। जेल में एक बार उनके हृदय में बहुत वैराग्य के भाव पैदा हो गए तथा उन्होंने प्राणोत्सर्ग करने के लिए अनशन रख लिया था मगर अन्ततः 20 अप्रैल 1920 को उन्हें रिहा कर दिया गया। रिहा होकर जब वे लाहौर आए तो अपनी पत्नी को दयनीय दशा में देखकर बहुत द्रवित हुए जो एक आर्य कन्या पाठशाला में मात्र सत्तर रूपए वेतन लेकर अपने दो बच्चों का पालन-पोषण कर रही थी।

भाई जी की रिहाई से पूरे भारतवर्ष में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। इन्हीं दिनों लाहौर में 'नेशनल कॉलेज' की स्थापना हुई तथा भाई जी उसके उपकुलपति के रूप में कार्य करने लगे। इधर अगस्त, 1920 में जब बाल गंगाधर तिलक जी का देहान्त हुआ तो कांग्रेस की बागडोर पूरी तरह गांधी जी के हाथों में आ गई। उन्होंने मुसलमानों को अपनी ओर करने के लिए ख़िलाफ़त का आन्दोलन आरंभ कर दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों के साम्प्रदायिक तत्वों को प्रोत्साहन मिला तथा वे न केवल संगठित हुए बल्कि वे भारत में अलग से अपना परचम लहराने के सपने भी देखने लगे। भाई जी हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे मगर किसी सम्प्रदाय

विशेष की तुष्टिकरण की नीति उन्हें पसंद नहीं थी क्योंकि वे इसके दूरगामी परिणाम को भांप रहे थे। तुष्टिकरण की नीति उन्हें पसंद नहीं थी क्योंकि वे इसके दूरगामी परिणाम को भांप रहे थे। गांधी जी की तुष्टिकरण की नीति जारी रही जिसके फलस्वरूप हिन्दू मुस्लिम दंगे होने लगे। जहां भी मुस्लिम बहुल क्षेत्र थे वहीं-वहीं हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार होने लगे। हिन्दुओं की दयनीय दशा को देखकर कुछ हिन्दू नेता बहुत द्रवित हुए तथा उन्होंने हिन्दुओं का कोई संगठन बनाने की दिशा में विचार किया। अन्ततः डॉ. बी.एस. मुंजे, पण्डित मदन मोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द तथा भाई परमानन्द आदि नेताओं ने हन्दू महासभा का गठन किया। भाई जी ने उन दिनों इस सत्य का उद्घाटन किया कि मुसलमान देश की राजनीति में पक्के मुसलमान बनकर भाग ले रहे हैं, सिक्ख भी पक्के सिख बनकर मैदान में आ रहे हैं, केवल हिन्दू ही हैं जो अपनी धार्मिक भावनाओं को एक ओर रखकर केवल राष्ट्रहित में कार्य कर रहे हैं। इसलिए भाई जी का यह मानना था कि हिन्दू महासभा को मज़बूत बनाने के लिए राष्ट्र का हित है। उन्हीं दिनों भाई जी ने लाहौर में एक 'केन्द्रिय हिन्दु युवक संघ' की भी स्थापना की तथा सन् 1930 में उन्होंने आकाशवाणी नाम से एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। इन्हीं दिनों शुद्धि आन्दोलन भी सक्रियता के साथ आगे बढ़ा जिसके मुख्य कर्णधार स्वामी श्रद्धानन्द तथा भाई जी थे।

गांधी जी की मुसलमान तुष्टिकरण की नीति के कुपरिणाम सामने आने आरंभ हो गए। अगस्त 1, 1933 को सरकार ने साम्प्रदायिक निर्णय ले लिया। मुसलमान अपने लिए निरन्तर सुविधाओं तथा आरक्षण की मांगें करते रहे तथा हिन्दू मौन होकर यह सब देखता भर रहा। इस स्थिति का वर्णन करते हुए भाई जी ने लिखा—'विधान सभा में मैं यह देखकर चकित होता था, कि वहां के मुस्लिम सदस्य, हमेशा इस प्रयास में

रहते थे कि किसी तरह मुस्लिम हितों को आगे बढ़ाया जाए। उनके सब प्रश्न भी साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ही पूछे गए होते। हिन्दू सदस्यों में से शायद ही कोई एक-आध हिन्दू अधिकारों के लिए बोलता। लगभग सभी ऐसे थे जो हिन्दू नाम लेना भी पाप समझते थे। मैं प्रयास करता कि हिन्दू सदस्यों का ध्यान इस ओर दिलाऊं मगर कोई प्रभाव न होता.....' कांग्रेस की इस नीति को देखते हुए कूटनीतिज्ञ सरकार भी मुसलमानों का ही अधिक पक्ष लेती थी। कम्युनल एवार्ड की घोषणा से मामला और भी बिगड़ गया। भाई परमानन्द जी ही एक मात्र व्यक्ति थे। जिन्होंने देश भर में इसके विरूद्ध प्रबल अभियान आरंभ किया। साम्प्रदायिक निर्णय के कुछ दिनों बाद ही सरकार ने श्वेत पत्र के नाम से एक और घोषणा की। बड़ी चतुराई के साथ हिन्दुओं का बहुमत अल्पमत में बदल दिया गया। घोषणा के अनुसार विधान सभा की कुल 250 सीटों में से परिगणित जातियों सहित हिन्दुओं को केवल 105 स्थान ही प्राप्त होंगे। कांग्रेस की नीति के कारण उसके विरूद्ध कोई प्रस्ताव पारित न हो सका अतः न चाहते हुए भी भारत विभाजन की भूमिका बन गई। भाई जी साक्षी देने के लिए लन्दन भी गए मगर सरकार की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सन् 1934 में भाई जी को अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का अध्यक्ष चुना गया। उन्होंने पूरे देश में हिन्दुओं को जागृत करने का अथक प्रयास किया मगर जब 1935 में चुनाव हुए तो हिन्दुओं ने पुनः कांग्रेस को ही समर्थन दिया। भाई जी हिन्दुओं के इस आत्मघाती निर्णय से भौचके से रह गए। वीर सावरकर जी को जब रत्नागिरी से मुक्त किया गया तो 1937 में उन्हें हिन्दू महासभा का अध्यक्ष बनाया गया। उन्होंने भाई जी की विचारधारा का प्रबल समर्थन किया तथा देशभर में इसका प्रचार-प्रसार किया।

भाई जी नहीं चाहते थे कि मुसलमानों की तुष्टिकरण

की नीति के कारण भारत का विभाजन हो। भविष्य में इस नीति का बहुत भयंकर परिणाम होने वाला है यह उनकी प्रतिभा ने अनुमान लगा लिया था इसलिए उन्होंने सन् 1928 में जबलपुर में सम्पन्न हुए हिन्दू महासभा के अधिवेशन में पारित एक प्रस्ताव में ही आगाह करते हुए कहा था किसी विशेष समुदाय की बहुसंख्या के आधार पर प्रान्तों का गठन देश में सुदृढ़ राष्ट्रीयता के विकास के लिए ख़तरनाक है और यह कदम भारत को हिन्दू भारत और मुस्लिम भारत में बांट देगा। भाई जी की इस दूरदृष्टि को नजरअन्दाज करके कांग्रेस द्वारा मुसलमानों का तुष्टिकरण जारी रहा तथा इसी से प्रोत्साहित होकर दिसम्बर 1930 में लखनऊ में मुस्लिम लीग के सम्मेलन में मुहम्मद इकबाल ने साफ़ शब्दों में घोषणा की थी– "मैं चाहता हूं कि पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त, सिन्ध और बलूचिस्तान को मिलाकर एक राज्य बना दिया जाए। अंग्रेज़ी साम्राज्य के भीतर या बाहर हमें तो अपना राज्य चाहिए। पश्चिमोत्तर भारतीय मुस्लिम राज्य के गठन से ही मेरी समझ में मुसलमानों का भविष्य सुनिश्चित हो सकेगा। अतः भारत के बीच मुस्लिम भारत के गठन की मांग पूर्णतया न्यायोचित है।"

हिन्दू-मुस्लिम एकता के वास्तविक तथ्य को उद्घाटित करते हुए भाई जी ने 1938 में रायबहादुर लालचन्द की पुस्तक 'सेल्फ एबनेगेशन इन पोलिटिक्स' के प्राक्कथन में लिखा था–'हिन्दू-मुसलमान एकता का अर्थ है देश की आज़ादी तथा उसे महान और समृद्ध बनाने हेतु हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त प्रयास। भागीदारिता बराबर के लोगों के बीच ही संभव है, जो अपने उद्देश्य के लिए बराबर संसाधन जुटाएं। राजनीतिक दृष्टि से हिन्दू बिखरे पड़े हैं। अपनी संस्कृति और महानता में उनका विश्वास डगमगा गया है। यदि वे मुसलमानों का सहयोग चाहते

हैं तो उसके लिए उन्हें अपनी उस सम्पदा का बलिदान करना होगा, जिसके लिए प्राचीन काल से लड़ते रहे हैं और अपना सर्वस्व न्योछावर करते रहे हैं। साथ ही यदि हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक तत्वों के मुकाबले में एकजुट नहीं होते तो भारत का विनाश चाहने वाले ये लोग किसी भी प्रकार की रियायत से सन्तुष्ट नहीं होंगे। हिन्दुओं को दुर्बल मानकर उनकी लिप्सा बढ़ती ही जाती है और हिन्दुओं में एकता का अभाव ही है जो उन्हें यह आभास दिला रहा है कि वे अपने उद्देश्य में सफल होंगे। ऐसे में क्या कांग्रेस स्वराज्य के लिए लड़ रही है। 'इसी प्रकार सन् 1940 में उन्होंने चेतावनी के रूप में कहा था—'कांग्रेस के साथ मेरा मूल भेद यह है कि इसने सदैव हिन्दुओं को 'हिन्दू' न बनने का उपदेश दिया है। मैं समझता हूं कि जो काम औरंगज़ेब, तैमूर, गौरी, गज़नी तथा अन्य आक्रमणकारी और तानाशाह रक्तपात और तलवार के बूते पर न कर पाए वह गांधी तथा उसके अनुयायी अपने दुष्प्रचार और दिखावे की देशभक्ति से कर पाएंगे और उसका परिणाम होगा हिन्दू जाति का सम्पूर्ण विनाश।' भाई जी इस विनाशकारी स्थिति को टालने का सदा प्रयास करते रहे मगर उनके इस कट्टर राष्ट्रवाद को न तो उस समय के नेता ही समझ सके और न ही हिन्दू। परिणाम स्वरूप देश को विभाजित करने तथा मूल धरातल पर हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वप्न ध्वस्त होता चला गया।

सितम्बर, 1945 को सरकार ने भारत में नए चुनाव कराने की घोषणा कर दी। चुनावों के माध्यम से यह निर्णय किया जाना था कि हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व कौन करता है। मुस्लिम लीग पाकिस्तान का नारा लेकर मैदान में उतरी मगर कांग्रेस का नारा 'आत्मनिर्णय का अधिकार' था अर्थात् यदि कोई प्रदेश भारत संघ से अपनी मर्ज़ी से अलग होना चाहेगा तो हो सकेगा।

मुसलमान वोट कांग्रेस को नहीं मिले इसलिए एक भी कांग्रेस का मुसलमान प्रत्याशी विजयी नहीं हुआ। पाकिस्तानी तत्वों की विजय हुई तथा हिन्दुओं के प्रत्याशियों की ज़मानतें ज़ब्त हो गईं इसलिए यह बात सिद्ध हो गई कि हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व कांग्रेस तथा मुसलमानों का मुस्लिम लीग करती है। इसी आधार पर ब्रिटिश सरकार ने 3 जून, 1947 को एक घोषणा कर दी, जिसके अन्तर्गत भारत को दो भागों में विभाजित कर दिया जायेगा तथा ब्रिटिश सरकार 15 अगस्त 1947 को सत्ता हस्तान्तरित कर देगी। भाई जी ने अपनी पूरी सामर्थ्य से इस स्थिति को टालने का प्रयास किया मगर यह देश का दुर्भाग्य ही रहा कि वे इस आत्मघाती स्थिति को रोक नहीं सके। भारत विभाजन से वे बहुत अधिक आहत हुए। हिन्दुओं की अकर्मण्यता पर उन्होंने बड़े दुःख के साथ कहा— **'जिन हिन्दुओं की रक्षा के लिए मैंने जीवन भर प्रयास किया, वे काठ के देवता की पूजा में लगे रहे। वे स्वयं ही अपनी दुर्गति के लिए उत्तरदायी हैं।'** भारत विभाजन की वेदना को वे इस प्रकार व्यक्त करते हैं— 'गांधी जी कहते थे कि मेरी लाश पर पाकिस्तान बनेगा, मगर उन्होंने बिना संकोच के ही भारत का विभाजन स्वीकार कर लिया।' भारत विभाजन से भाई जी जैसे सच्चे राष्ट्र भक्त को इतना अधिक आघात पहुंचा कि वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गए। उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया तथा 8 दिसम्बर, 1947 को सदा-सदा के लिए अपनी आंखें बंद कर लीं। हमारा दुर्भाग्य यह है कि आज भी इस देश में वही तुष्टिकरण की नीति परवान चढ़ी हुई है तथा आतंकवाद और अलगाववाद को प्रश्रय देकर राष्ट्र के चतुर्दिक विकास पर ही कुठाराघात नहीं कर रही है बल्कि हमारी मूल संस्कृति एवं राष्ट्र की अस्मिता, एकता और अखण्डता पर भी प्रश्नचिन्ह सा लगता चला जा रहा है.....

8. वीर सावरकर

क्रांतिकारी सावरकर जी का जन्म 28 मई, 1883 को महाराष्ट्र के जिला नासिक के गांव भगूर में हुआ था। इनके पिता जी का नाम श्री दामोदर पन्त जी तथा माता का नाम राधाबाई था। इनके पिता कवि हृदय तथा अध्ययनशील व्यक्ति थे और माता जी भी धार्मिक वृत्ति तथा बहुत ही दयालु स्वभाव की थीं। मां बाप के उज्ज्वल संस्कारों के कारण सावरकर जी भी बचपन से ही बहुत कुशाग्र बुद्धि थे। मात्र दस वर्ष की आयु में इन्होंने चाफेकर बन्धुओं के बलिदान पर अपनी प्रभावपूर्ण रचना लिखी थी जिस पर इनके अध्यापक वर्ग ने भी बिस्मित होकर मुक्तकण्ठ से इनकी प्रशंसा की थी। मात्र पन्द्रह वर्ष की अवस्था में सावरकर जी ने स्वाधीनता के प्रति युवकों को संगठित करने के लिए 'मित्र मेला' नाम की एक संस्था का गठन किया। बाद में इस संगठन का नाम 'अभिनव भारत' रखा था। इस संगठन ने केवल भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि विदेश में भी क्रांति की अग्नि को प्रज्वलित रखने में अपना अत्यधिक सहयोग दिया। ऐसा लगता है जैसे वे जन्मजात ही क्रांतिकारी थे। इनके राष्ट्रभक्ति के विचारों के कारण इन्हें कालेज से निष्कासित किया गया था।

इन्होंने सर्वप्रथम विदेशी वस्त्रों की होली जलाई थी। वे प्रथम भारतीय थे जिन्होंने '1857 का स्वातंत्रय समर' नामक पुस्तक लिखकर 1857 के ग़दर को 'स्वतंत्रता संग्राम' की परिभाषा दी थी। प्रसिद्ध क्रांतिकारी भगत सिंह तथा चन्द्रशेखर ने इस ग्रंथ को क्रांतिकारियों की गीता कहा था। 'हिन्दुत्व' नाम की पुस्तक के भी यही रचेता थे हालांकि उसमें लेखक का नाम गुप्त रखा गया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इस ग्रन्थ के बारे में कहा था कि यह ग्रन्थ वैदिक काल के किसी

ऋषि द्वारा लिखा हुआ लगता है। सावरकर जी बचपन से ही क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न रहते थे मगर जब वे 1905 में अपनी बैरिस्ट्री का अध्ययन करने के लिए इंग्लैंड गए तो वहां इनका सम्पर्क महर्षि दयानन्द जी के अनन्य भक्त तथा इण्डिया हाऊस के संस्थापक श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा से हुआ। सावरकर जी उन्हीं वर्मा जी द्वारा प्रदत्त छात्रवृत्ति के आधार पर इंग्लैंड गए थे।

इण्डिया हाऊस उन दिनों क्रांतिकारियों का गढ़ माना जाता था। वहां जाकर सावरकर जी क्रांतिकारी गतिविधियों से अत्यधिक सक्रियता के साथ जुट गए। अपनी विशेष सूझ-बूझ तथा अद्भुत प्रतिभा के कारण वे श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा के इतने विश्वास पात्र बन गए कि जब वर्मा जी सन् 1907 में लन्दन छोड़कर पैरिस जाने लगे तो इण्डिया हाऊस का समस्त कार्य श्री सावरकर जी को सौंप दिया। भाई परमानन्द, लाला हरदयाल, मादाम कामा तथा मदन लाल ढींगरा आदि इस संस्था के सदस्य बने। लगभग इन्हीं दिनों सावरकर जी के भाई गणेश सावरकर जी को सम्राट के विरूद्ध युद्ध छेड़ने के अपराध में देश-निर्वासन की सज़ा सुनाई गई। जब 20 जून, 1909 को यह समाचार इण्डिया हाऊस पहुंचा तो सावरकर जी इससे बहुत कुपित हुए तथा उनके हृदय में अंग्रेज़ी राज को ध्वस्त करने की भावना और अधिक प्रज्वलित हो गई। इधर 1 जुलाई, 1909 को मदनलाल ढींगरा जी ने कर्ज़न वायली की हत्या कर दी। यह वायली बहुत ही अत्याचारी था तथा इसने क्रांतिकारियों पर बहुत जुल्म ढाए थे। कर्ज़न की हत्या पर कुछ चाटुकार भारतीयों ने आगाख़ां की अध्यक्षता में एक बैठक बुलाई तथा इस घटना पर सर्वसम्मति से खेद प्रकट करने की घोषणा की। सावरकर जी अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने अत्याचारी कर्ज़न की हत्या को

सही ठहराया। उन्हीं दिनों अनन्त कान्हेरे नामक एक अन्य क्रांतिकारी ने जैक्सन नामक एक अंग्रेज को गोली मार दी। अंग्रेज़ सरकार के खुफ़िया विभाग ने रिपोर्ट दी कि इन दोनों ही हत्याओं के पीछे सावरकर की ही प्रेरणा रही है अंग्रेज़ सरकार ने इन्हें क्रांतिकारियों का ख़तरनाक गुरू मानते हुए दो हत्याओं के प्रेरक होने के दोष में सन् 1912 में एक नहीं बल्कि दो-दो आजन्म कारावास की सज़ा सुनाई। सज़ा देने वाले न्यायाधीश ने जब उनसे पूछा-'क्या तुम समझते हो कि दो आजीवन कारावासों की सजा पूरी करके तुम जेल से वापस लौट सकोगे?' वीर सावरकर जी ने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया—'मैं जीवित लौट पाऊं या न लौट पाऊं मगर इतना निश्चित है कि तब तक ब्रिटिश साम्राज्य बना नहीं रहेगा। सावरकर जी के अदम्य साहस का परिचय हमें उस समय मिलता है जब इन्हें मोरिया नामक जहाज़ द्वारा लन्दन से भारत लाया जा रहा था। उन्हें इस बात का पता था कि भारत पहुंचने पर भी उन्हें मृत्यु पर्यन्त जेल में ही रहना पड़ेगा इसलिए इस स्थिति से बचने के लिए उन्होंने अद्‌भुत साहस का परिचय दिया। जब यह जहाज़ फ्रांस के मार्सेलीज़ बन्दरगाह से चला ही था तब सावरकर जी शौचालय में गए और वहां बने एक छेद में से समुद्र में कूद पड़े। हालांकि किनारा बहुत दूर था मगर साहस करके ये तैरते-तैरते किनारे तक पहुंच गए और इन्होंने फ्रांसीसी पुलिस के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। दुर्भाग्य यह रहा कि फ्रांसीसी सरकार ने सावरकर जी को पुनः अंग्रेज़ों को ही सौंप दिया।

दामोदर सावरकर तथा राधाबाई जी को इस बात का गौरव प्राप्त है कि उनके तीनों ही बेटों ने देश की स्वतंत्रता के लिए काले पानी की सजा भोगी। सावरकर जी के अन्य दो भाई जिन्हें काले पानी की सज़ा हुई थी, के नाम हैं गणेश

दामोदर सावरकर तथा नारायण दामोदर सावरकर। सावरकर जी ने निरन्तर तेरह वर्षों तक अण्डमान की जेल में ऐसी अमानवीय यातनाएं भोगीं जिनके स्मरण मात्र से ही हृदय सिहर जाता है। स्वतंत्रता संग्रामियों पर निगरानी रखने के लिए जेल में बहुत ही खुंखार तरह के कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे जो क्रांतिकारियों को मनमानी यातनाएं देते थे तथा उनका अपमान करते थे। मन्मथनाथ गुप्त जी ने 'अण्डमान की गूंज' नामक पुस्तक में इन यातनाओं का विवेचन किया है। क्रांतिवीरों को घण्टों नंगा करके बर्फ की शिलाओं पर लिटाया जाता था, उनके शरीर पर इतनी शक्ति से कोड़े बरसाए जाते थे कि उनके जिस्म से मांस उछल कर दीवारों से चिपक जाता था। बहुत से क्रांतिकारी तो उन यातनाओं के कारण ही दम तोड़ देते थे। सावरकर जी को भी इस प्रकार की यातनाओं का सामना करना पड़ा। उन्हें भोजन भी पर्याप्त तथा अनुकूल नहीं मिलता था। जहां तक कि कोल्हू में बैल के स्थान पर इन्हें जोता जाता था मगर भारत मां के इस लाडले के साहस और शौर्य में किसी प्रकार की भी कमी नहीं आई। इस सम्बन्ध में इनके साथी श्री शान्ति भानु लहरी जी लिखते हैं—'एक दिन मैं टहलते-टहलते आगे जाकर देखता हूं कि कड़ा लोहे का डण्डा पैरों में पड़ा है। दोनों हाथ फैले हुए तथा हथकड़ियों से इस प्रकार बंधे हुए हैं जो किसी को भी उनसे बात नहीं करने देता। मैंने वहां के एक पुराने कैदी से प्रश्न किया कि यह कौन है? कैदी ने उत्तर दिया आप नहीं जानते? .....यही सावरकर है। वीर सावरकर को यह कष्ट पाते देखकर मेरी आंखों में आश्रुकण छलक पड़े।

ये जेल में भी अपने लेखन कार्य और समाज सेवा में लगे रहे। एक दिन इन्होंने देखा कि एक पठान ने एक मद्रासी

कैदी की चोटी पकड़ कर गाली दी। साले काफ़िर की चोटी उखाड़ डालो। सावरकर जी का मन इस घटना को देखकर बहुत आहत हुआ तथा इन्होंने जेल में हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनाने के षडयंत्र के विरूद्ध न केवल आवाज़ उठाई बल्कि उस धर्मान्तरण को रोकने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परमानन्द तथा अन्य आर्यसमाजी बन्दियों ने उनका इस कार्य में पूरा-पूरा सहयोग दिया। वे भविष्यद्रष्टा थे यही कारण था कि गांधी जी की मुसलमान तुष्टिकरण की नीति का वे सदा विरोध करते रहे। उनकी दृष्टि में धार्मन्तरण का अर्थ था राष्ट्रान्तरण। आगे चलकर समूचे देश को यह अभिशाप भोगना पड़ा जब भारत स्वतंत्र तो हुआ मगर उसके दो टुकड़े हो गए। आज भी इसी तुष्टिकरण तथा धर्मान्तरण के अभिशाप को पूरा देश भोग रहा है क्योंकि जहां भी तथाकथित अल्पसंख्यक बहुतायत में हो जाते हैं वहां वे हिन्दुओं को प्रताड़ित करते हैं तथा अलग राष्ट्र की मांग उठाना आरंभ कर देते हैं। तुष्टिकरण की इस विनाशकारी नीति के कारण जब देश के टुकड़े हुए तो मालवीय जी ने कहा था—**'काश! देश सावरकर जी की चेतावनी पर ध्यान देता और गांधी जी जिन्ना के सामने समर्पण न करते तो यह दुःखद स्थिति पैदा न होती।'**

हिन्दू महासभा के अध्यक्षीय पद से बोलते हुए एक बार सावरकर जी ने धर्मान्तरण के इस कुकृत्य के बारे में कहा था— 'हमारे देश में मुसलमानों के बाद विदेशी ईसाई मिशनरियों ने धर्म परिवर्तन शुरू किया हुआ है....शिक्षा, औषधि, धन आदि के लालच देकर वे इस कुचक्र को चला रहे हैं किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि धर्मान्तर माने राष्ट्रान्तर है। धर्म परिवर्तन का अर्थ राष्ट्रीयता का परिवर्तन है। यदि हिन्दू सहिष्णुता, उदारता तथा धर्मों को समान मानने

की मूर्खताओं में उलझ कर इस षडयंत्र को अनदेखा करता रहा, तो उसका भयंकर परिणाम हमारी भावी पीढ़ी को भोगना होगा। अंग्रेज़ों व ईसाई मिशनरियों के षडयंत्र को शुद्धि अभियान चलाकर असफल करके ही देश को बचाया जा सकता है।' महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के समान उनकी पैनी दृष्टि ने भी देख लिया था कि मुख्य रूप से हमारे पतन का कारण सामाजिक कुरीतियां ही हैं तथा ऐसा लगता है जैसे उन्होंने **महर्षि जी द्वारा समाज सुधार की दिशा में किए गए प्रत्येक कार्य को सक्रियता के साथ आगे बढ़ाया। उन्होंने भी स्त्री शिक्षा पर बल दिया क्योंकि वे भी मानते थे कि जिस देश में नारियां विदुषी और सहसी होंगी वहीं पर अच्छी सन्तान पैदा हो सकती है।** धर्मान्तरण की तरह ही वे अनेक प्रकार के अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों तथा छुआछूत को भी एक बहुत बड़ा अभिशाप मानते थे तथा इन सबके विरूद्ध भी उन्होंने अपनी सक्रिय भूमिका निभाई। **अपने छोटे भाई को 5 मार्च, 1915 में एक पत्र में वे लिखते हैं– "हमारी सामाजिक संस्थाओं में सबसे निकृष्ट संस्था है 'जाति'। जात-पात भारत के लिए सबसे भयंकर अभिशाप हैं इससे हिन्दू जाति का वेगवान प्रवाह दलदल और मरूभूमि में धंस जाएगा। इस पाप को तो जड़मूल से नष्ट कर डालना चाहिए।"** इस संकल्प को कार्यान्वित करने की दिशा में उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर भाषण तो दिए ही मगर साथ ही रत्नागिरि में एक पतित पावन मन्दिर का निर्माण करवाया जिसका पुजीर एक हरिजन को रखा गया। भगूर आर्यसमाज में इन्होंने उन दिनों भी हरिजन स्नेह सम्मेलन का आयोजन किया था।

6 जनवरी सन् 1928 को उन्हें कालापानी से रत्नागिरि में लाकर नज़रबन्द कर दिया गया। यहां पर भी उन्होंने अपने समाज सुधार के कार्य जारी रखे। नौ वर्ष के बाद सन् 1927

में जब प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रीमण्डल बने तो 10 मई, 1937 को उन्हें जेल से रिहा किया गया। उसके बाद भी ये निरन्तर क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े रहे। ये भारतवर्ष को एक अत्यधिक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। 28 मई, 1958 में सावरकर जी ने एक सभा में अपनी ऐसी ही इच्छा व्यक्त करते हुए कहा था– 'मेरी अब एक ही इच्छा शेष है और वह है भारत को रूस के समान बलशाली राष्ट्र के रूप में देखना। आज विश्व में अमेरिका और रूस इन दो राष्ट्रों का ही बड़े राष्ट्रों के नाते उल्लेख किया जाता है।उनका बड़ापन उनके आकार अथवा क्षेत्रफल के कारण नहीं, अपितु उनके पास विद्यमान हाइड्रोजन एवं अणुबमों के कारण है। किसी भी राष्ट्र की महानता उसकी सैनिक शक्ति पर निर्भर रहती है। भारत को चाहिए कि वह शक्ति सम्पादन करे। मैं आरंभ से ही यह मानता आया हूं कि राष्ट्र का सैनिकीकरण किया जाना ही युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। देश की स्वतंत्रता के उपरान्त तो सैनिकशक्ति का महत्व और भी बढ़ गया है।' इसी शक्ति सम्पन्नता तथा गौरवमयी स्थिति के आधार पर उन्होंने भारतवर्ष को हिन्दू राष्ट्र की संकल्पना की थी–'**.....भारत का चप्पा-चप्पा हिन्दुत्व से ओत-प्रोत है। भारत का इतिहास हिन्दुओं की वीरता, पराक्रम, बलिदानों की गाथाओं से बना है। अतः जब तक इस देश के हिन्दू सशक्त व संगठित नहीं होंगे, तब तक देश गौरव तथा समृद्धि के शिखर पर नहीं पहुंचेगा।**'

स्वतंत्र भारत में भी सावरकर की दूरदृष्टि को नज़रअंदाज़ किया गया और उसका कुपरिणाम आज हमारे सामने है। आज पूरा देश इस्लामी कट्टरवाद का अभिशाप भोगने पर मजबूर है। अलगाववाद अपनी चरमसीमा पर पहुंच चुका है। ईसाई मिशनरी भी धर्मान्तर की आड़ में लोगों की देशभक्ति

को न्यून करने में लगे हुए हैं। सरकार की तुष्टिकरण की नीति के बारे में एक बार उन्होंने कहा था–'वोटों या सत्ता के लिए गलत मांगों के आगे झुकने से अवांछनीय व राष्ट्र विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन मिलेगा। सरकार को चाहिए कि वह राष्ट्रहित को सर्वोपरि माने तथा विदेशों के प्रति निष्ठा रखने वाले तत्वों को सख्ती से कुचले। यदि नागालैंड के अन्तरराष्ट्रीय तत्वों को सहन किया जाता रहा तो देश की अखण्डता के लिए खतरा पैदा हो जाएगा। सावरकर जी अपने जीते जी भारत को गौरव की चरमसीमा पर पहुंचाने के लिए कार्य करते रहे। अन्ततः इन्हीं सपनों को हृदय में संजोकर इस वीरपुंगव ने 26 फ़रवरी, 1966 को सदा सदा के लिए अपनी आंखें बन्द कर लीं। सावरकर जी का नाम भारतवर्ष के इतिहास में सदा अमर रहेगा। यह अत्यधिक दुर्भाग्य की बात है कि अपने आप को तिल-तिल कर गलाते हुए जिस व्यक्ति ने भारत मां को स्वतंत्र कराने के लिए इतने अधिक अमानवीय कष्ट सहे। गत दिनों कुछ तथाकथित धर्मनिरपेक्ष राजनैतिक पार्टियों ने संसद में उनका स्टैचू लगाने का विरोध किया.....मगर इस प्रकार की प्रवृत्ति का सहारा लेकर भी उस महामानव के बलिदानों को विस्मृत नहीं किया जा सकता है....राष्ट्र के प्रति उनके द्वारा किए गए महानतम कार्यों को आने वाली पीढ़ियां निश्चित रूप से सम्मान देंगी तथा उनके सपनों को साकार करने तथा भारतवर्ष को पुनः प्राचीनतम गौरव दिलाने के लिए उनके द्वारा बताए गए सूत्रों को कार्यान्वित करेंगी.....।

9. चन्द्रशेखर आज़ाद

भारतवर्ष को स्वतंत्र कराने के लिए जिन बहादुरों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया उनमें चन्द्रशेखर आज़ाद का अपना एक विशेष तथा अलग ही स्थान है। भारत मां के इस लाडले का जन्म मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले की तहसील अलीराजपुर के एक छोटे से गांव 'भाबरा' में 23 जुलाई, 1906 में हुआ। स्वनाम धन्य आजाद को जन्म देने का गौरव कान्यकुब्ज ब्राह्मण पण्डित सीताराम तथा जगरानी देवी दम्पत्ति को प्राप्त हुआ। पांच वर्ष की आयु में स्थानीय पाठशाला में इनकी शिक्षा आरंभ हुई तथा ब्राह्मण परिवार के सात्विक संस्कारों के उदित होने पर इनकी इच्छा संस्कृत के अध्ययन की हुई। पिता जी से इस सम्बन्ध में बात की मगर पिताजी ने उन्हें संस्कृत पढ़ने के लिए काशी नहीं भेजा। धुन का धनी चन्द्रशेखर एक दिन चुपचाप घरसे निकल कर बम्बई पहुंच गया तथा फिर काशी में जाकर एक गुरूकुल में संस्कृत का अध्ययन आरंभ कर दिया। उन्हीं दिनों गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन का आवाहन किया। पन्द्रह वर्षीय चन्द्रशेखर ने काशी में पुलिस के अत्याचारों से क्रुध होकर एक पुलिस वाले को पत्थर मारकर घायल कर दिया। पत्थर मारने वाले इस युवक की तलाश की गई तथा माथे पर लगे चन्दन के तिलक के आधार पर पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया। पकड़कर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मजिस्ट्रेट ने पूछा–'तुम्हारा नाम क्या है?' चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया– 'आज़ाद'। मजिस्ट्रेट ने पुनः पूछा– 'तुम्हारे पिता का नाम? 'इधर से उत्तर था–'स्वतंत्र'। फिर पूछा गया–'तुम्हारा घर कहां है? चन्द्रशेखर ने उत्तर दिया 'जेलख़ाना'। मजिस्ट्रेट इस युवक के उत्तरों को सुनकर विस्मित रह गया। उसने इस युवक को पन्द्रह बैंत की सज़ा सुनाई। चन्द्रशेखर के नंगे बदन पर ज्यों ही बैंत की चोट पड़ती थी तो वह उच्च स्वर में बोलता

था—'इन्कलाब ज़िन्दाबाद, महात्मा गांधी की जय।' युवक के साहस और धैर्य पर बैंत मारने वाला भी हैरान था। चन्द्रशेखर आज़ाद स्वतंत्रता संग्राम में कूद तो पड़े थे मगर जब गांधी ने अचानक असहयोग आन्दोलन बन्द कर दिया तो अन्य क्रांतिकारियों के साथ-साथ आजाद का भी गांधी के प्रति मोह भंग हो गया। संयोगवश इन्हीं दिनों काशी में ही उनकी भेंट महान क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल, मन्मथनाथ गुप्त तथा प्रणवेश चटर्जी के साथ हुई तथा वे भी क्रांतिकारी दल के साथ हो गए। थोड़े ही दिनों में बिस्मिल, आजाद की प्रतिभा, बहादुरी तथा सूझ-बूझ के कायल हो गए तथा क्रांतिदल में आज़ाद का एक विशेष स्थान बन गया। उनकी तेज़ी से काम करने की प्रतिभा को देखकर उनका गुप्त नाम 'क्विक सिल्बर' रखा गया।

चन्द्रशेखर आज़ाद भले ही क्रांतिकारी थे मगर उनके हृदय में भी अन्य क्रांतिकारियों की तरह मानव मूल्यों के प्रति अत्यधिक आस्था और विश्वास था। मूलतः वे भी आस्तिक तथा गहन चिन्तन के साथ जुड़े हुए थे। स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा लिखित राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत 'आर्याभिविनय' नामक ग्रन्थ के एक वेदमंत्र का स्वाध्याय करने के बाद ही आज़ाद अपना प्रातराश आदि ग्रहण किया करते थे। स्वाध्याय के प्रति अन्त तक उनकी आस्था बनी रही तथा वे सब प्रकार के आडम्बर और पाखण्डों से सर्वदा दूर रहे। दुर्गाभाभी जी के अनुसार वे सरल स्वभाव के थे। दांव पेच और कपट की बातों से उनका दम घुटता था। वे चरित्र के भी बहुत धनी थे। इसके अतिरिक्त वे अचूक निशानेवाज़, स्वाभिमानी, कर्तव्य परायण, नेतृत्व प्रवीण, राष्ट्रभक्त उत्साही तथा अत्यधिक बहादुर थे। अपने क्रांतिकारी साथियों की सुरक्षा करने तथा उनके लिए सुविधा जुटाने में वे सदा आगे रहते

थे। बड़ी से बड़ी मुसीबत में भी अपने धैर्य और प्रतिभा को कुन्द नहीं होने देते थे। आज़ाद की प्रवृत्ति कभी भी भोगवादी नहीं रही। उनके जीवन में ऐसा क्षण आया कि एक युवती स्वेच्छा से उन्हें अपना सर्वस्व देना चाहती थी मगर आज़ाद उस अग्नि परीक्षा में भी खरे उतरे। वैशम्पायन जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं—'आज़ाद का सबसे बड़ा सम्बल था उनका चरित्र। इसको उन्होंने सदा महत्व दिया और इस धारणा पर जीवन के अन्त तक दृढ़ रहे। चरित्रहीन व्यक्ति से वे सदा घृणा करते थे। उनका निशाना बहुत अचूक था। यह महारत भी उन्हें बचपन में ही प्राप्त हो गई थी क्योंकि वे बचपन में धनुर्विद्या में बहुत निपुण थे। बाद में पिस्तौल चलाने में भी वे इतने ही सिद्धहस्त हो गए थे। कहते हैं कि एक बार उन्होंने अपने मित्रों के अनुरोध पर पेड की टहनी के एक बड़े पत्ते में पिस्तौल की गोली से पांच अलग-अलग छेद कर दिए थे। ये इतने सहृदय थे कि कहीं भी किसी प्रकार के अन्याय को सहन नहीं कर पाते थे। एक गुण्डा लड़कियों को छेड़ा करता था उसे आज़ाद ने एक दिन में ही सही रास्ते पर ला दिया था। एक व्यक्ति अपनी पत्नी को बहुत पीटता था आज़ाद ने उसकी बुद्धि को भी ठिकाने लगा दिया था। असहाय और ग़रीबों को देखकर भी ये द्रवित हो जाया करते थे। धनीराम नाम के एक बढ़ई को एक पठान उससे पैसा लेने के लिए बहुत सताता था। आज़ाद ने उस पठान से उस बढ़ई को मुक्ति दिलाई।

आज़ाद में अपने संगठन का नेतृत्व करने की भी अद्‌भुत क्षमता थी। किसी भी योजना का बनाना तथा फिर उसे कार्यान्वित करना और अपने साथियों को निकालकर किसी सुरक्षित स्थान तक पहुंचाना यह सब कार्य आज़ाद बखूबी निभाते थे। वे केवल दूसरों को ही मुसीबत में नहीं डालते थे बल्कि प्रत्येक कार्य में उनकी अपनी सक्रिय भूमिका रहती थी।

अपने संगठन को चलाने के लिए उन्हें धन की ज़रूरत होती थी। रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक उल्ला खां, आज़ाद तथा इनके कुछ अन्य साथियों ने 9 अगस्त, 1925 को सरकारी ख़ज़ाना लूटने की योजना बनाई। काकोरी रेलवे स्टेशन पर रेल रोक कर सरकारी ख़ज़ाना लूट लिया गया। अंग्रेज़ सरकार के होश गुम हो गए। बिस्मिल तथा अशफ़ाक उल्ला खां को फांसी की सज़ा हो गई मगर आज़ाद पुलिस की ग्रिफ़्त में नहीं आ सके। वे पुलिस की आंख में धूल झोंककर दत्तिया जा पहुंचे। उन्होंने बड़े उत्साह के साथ छिन्न-भिन्न हुए संगठन का पुनर्गठन किया। झांसी में उनकी भेंट भगतसिंह तथा राजगुरू से हो गई। बाद में बटुकेश्वर दत्त भी इनसे आ मिले। इन सब तथा कुछ अन्य क्रांतिकारियों को लेकर इन्होंने हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी नामक दल बनाकर क्रांतिकारियों को संगठित होकर कार्य करने की दिशा प्रदान की। झांसी तथा कानपुर के साथ-साथ इन्होंने ग्वालियर, सहारनपुर, देहरादून, इलाहाबाद तथा दिल्ली में भी संगठन की शाखाएं स्थापित कीं। बाद में अजमेर, जयपुर तथा पूना आदि से भी संपर्क स्थापित कर लिया गया। स्वयं भूखे रहकर, मात्र पानी पीकर या मुट्ठीभर चन्ने खाकर भी इस क्रांतिकारी ने अपने संगठन और देश सेवा का काम जारी रखा तथा कभी भी अपनी नैतिकता और सच्चरित्रता पर आंच नहीं आने दी। धन आदि एकत्रित करने के लिए किसी ग़रीब या स्त्री को तंग करना उन्हें बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं था। एक बार कुछ लोगों ने ऐसा किया तो आज़ाद ने उन्हें डांटते हुए कहा था कि याद रखो हम चोर उच्चके नहीं हैं...।

किसी भी एक्शन प्लान के समय आज़ाद स्वयं सबसे आगे रहने का प्रयास करते थे ताकि अपने साथियों की सुरक्षा कर सकें। अपने क्रांतिकारी साथियों के प्रति उनके हृदय में

कितना प्यार और ममत्व था वह इस बात से पता चलता है कि कुछ क्रांतिकारियों ने एक बार उनके सामने एक साथ दो योजनाओं को कार्यान्वित करने की योजना रखी। एक दिल्ली से लाहौर ले जाते समय भगतसिंह और दत्त को छुड़ाने की तथा दूसरी देहरादून में शिकार खेलने के अवसर पर वायसराय पर बम फेंकना। आज़ाद ने अपने साथियों को छुड़ाने की योजना के लिए तो स्वीकृति दी मगर वायसराय पर बम फेंकने की योजना को यह कहते हुए नकार दिया कि– 'अब मैं अलग-अलग साथियों को एक्शन में नहीं झोंकूंगा। दल के सेनापति के नाते क्या मेरा यही काम है कि लगातार नए-नए साथी जमा करूं, उनसे अपनापन बढ़ाऊं, फिर योजना बनाकर उन्हें मौत के हवाले कर दूं? यदि चलना होगा तो इस बार सब एक साथ चलेंगे।' इस सम्बन्ध में शिव वर्मा ने एक घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है–'उसी दिन झुटपुटा होते ही कानपुर से सुरेन्द्र पाण्डे आ गए। वे काफी परेशान से लग रहे थे, उन्हों ने बताया कि पुलिस को आज़ाद के झांसी में होने का पता चल गया है और कानपुर का सी.आई.डी. सबइन्सपैक्टर शम्भूनाथ उनकी तलाश में झांसी आया है। वे कानपुर से यही सूचना देने आए थे.....उसका अनुमान था कि संभवतः उसी रात झांसी में विभिन्न स्थानों पर आज़ाद की तलाश में पुलिस छापे मारेगी। .....उस सूचना के बाद पूरा अन्धेरा होने से पहले किसी के मकान से बाहर निकलने का अब कोई प्रश्न नहीं था। जब रात का अन्धेरा घना हो गया तो यह सवाल उठा कि कौन सबसे पहले बाहर निकले।....हम चाहते थे कि हमारे रहते ही आज़ाद सही सलामत किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाएं। आज़ाद इसके लिए राज़ी न थे। मकान पर किसी भी समय पुलिस छापा मार सकती थी और जो जितनी देर तक वहां अटका रहेगा उसके लिए उतना ही अधिक ख़तरा भी होगा। इसलिए हम लोग आज़ाद को वहां से हटा देना

चाहते थे। उधर अन्य साथियों को छोड़कर केवल अपनी फ़िक्र करना आज़ाद के स्वभाव के विपरीत था। काफ़ी देर तक इस मसले पर बहस होती रही, लेकिन आज़ाद पर हमारे तर्क, अनुनय-विनय प्रार्थना आदि का कुछ भी असर न पड़ा। अकेला छोड़कर बाकी लोग वहां से हटने को राजी न हुए तो उन्होंने आख़िरी ब्रह्मास्त्र फेंका—'दल के सेनापति के नाते मैं तुम चारों को आदेश देता हूं कि फ़ौरन एक-एक करके मकान के बाहर हो जाओ।' जब लोगों ने उनकी चिन्ता की बात की तो वे बोले कि उसकी चिन्ता न करें जीते-जी इस शरीर पर कोई हाथ नहीं लगा सकेगा। बाद में आज़ाद भी सुरक्षित निकल आए थे। आज़ाद के इस स्नेह के कारण ही क्रांतिकारी उनके एक संकेत पर अपनी जान लुटाने के लिए तैयार रहते थे।

अक्टूबर 1928 में साइमन कमीशन भारत आया। लाहौर पहुंचने पर इसका विरोध करने के लिए लाला लाजपत राय जी के नेतृत्व में जनता उमड़ पड़ी। अंग्रेज सिपाहियों ने लाला जी पर जानलेवा हमला किया तथा उन्हें लाठियों से इतनी बेरहमी से पीटा कि लाला जी शहीद हो गए। विरोध कर रहे जलूस में भगतसिंह और राजगुरू भी थे। इस घटना से उनका खून खौल उठा तथा उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक लाला जी के हत्यारे पुलिस कप्तान सांडर्स की हत्या नहीं कर लेंगे तब तक चैन से नहीं बैठेंगे। आज़ाद इस समाचार को सुनकर तुरन्त लाहौर पहुंचे और भगतसिंह तथा राजगुरू के साथ मिलकर सांडर्स को मारने का विधिवत् एक्शन प्लान बनाया। सांडर्स पर गोली चलाने का काम भगतसिंह और राजगुरू को दिया गया और उन्हें सुरक्षित वापस लाने का कार्यभार स्वयं आज़ाद ने अपने ऊपर लिया तथा 17 दिसम्बर, 1928 को इस कार्य को कार्यान्वित भी कर दिया गया। अंग्रेज़ सरकार द्वारा 9 अप्रैल, 1929 को असैम्बली में 'पब्लिक सेफटी बिल' प्रस्तुत

किया जाना था। इस अत्याचार तथा दमनकारी बिल का विरोध करने के लिए भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दिल्ली जा पहुंचे। हालांकि आज़ाद स्वयं इस कार्य को अंजाम देना चाहते थे मगर साथियों के प्रबल आग्रह पर उन्हें संगठन का कार्य करने के लिए अलग रखा गया। भगतसिंह और दत्त ने असेम्बली की दर्शक दीर्घा से अंग्रेज़ों की दमन-नीति का भण्डाफोड़ करने वाले पर्चे और बम फेंके ओर बाद में स्वयं ही अपने आप को गिरफ़्तार करवा लिया। आज़ाद की दृष्टि में भ्रगतसिंह एक ऐसा हीरा था जिसे वे खोना नहीं चाहते थे इसलिए वे इस प्रकार की स्वयं ही अपनी गिरफ़्तारी करवाने के पक्ष में नहीं थे मगर जब अन्य सदस्यों ने इस पर ज़ोर दिया और खासकर सुखदेव ने भगतसिंह पर आक्षेप भी किए तब वे चुपकर गए। फिर भी उनके लिए यह एक अत्यधिक दुःखद घटना थी। उनको भगतसिंह और अपने अन्य साथियों से कितना अधिक प्रेम था इसका उल्लेख 'यश की धरोहर' में इस प्रकार किया गया है—'जब भगतसिंह और दत्त दिल्ली की असेम्बली में बम फेंक कर गिरफ़्तार हो गए तो दो-चार दिन बाद साथी शिव वर्मा उन दोनों के फोटो लेकर झांसी आए। शिव वर्मा ने बड़ी भावुकता से सुनाया कि किस प्रकार वे पिस्तौल की नोक पर, अपने आप को खतरे में डालकर, फोटोग्राफर के यहां से ये चित्र लाए हैं। हम सभी भावुकतावश अपनी भीगी आंखों को पोंछ रहे थे। उस समय आज़ाद बिल्कुल 'स्थिंप्रज्ञ' की तरह अविचलित रहे। पर कुछ देर बाद वे अकेले में बैठे कुछ सोच रहे थे, तो मैंने देखा कि उनकी आंखों मं आंसू हैं....।

आज़ाद जीवन भर अद्‌भुत कार्य करते रहे। कभी ब्रह्मचारी के भेष में तो कभी संन्यासी के भेष में रहकर अंग्रेज़ों को लगातार छकाते रहे। वे कभी भी पुलिस के हत्थे नहीं चढ़े बल्कि अपनी सूझ-बूझ, आत्मविश्वास और साहस के कारण सदा आजाद ही रहे। भगतसिंह तथा दत्त की गिरफ्तारी के बाद क्रांतिकारियों

पर पुनः संकट और बिखराव के बादल घूमड़ने लगे। दिल्ली षडयंत्र केस के मुखबिर कैलाशपति के ब्यान के आधार पर पुलिस चारों ओर क्रांतिकारियों के पीछे पड़ गई थी तथा आज़ाद के साथी एक-एक करके पकड़े या मारे जा रहे थे। अपने ही साथियों के विश्वासघात और नीचतापूर्ण कृत्यों से आज़ाद बहुत दुखी हुए तथा उन्होंने दल को भी भंग कर दिया। इसी बीच आज़ाद एक व्यापारी से मिलने इलाहाबाद गए। यह मुलाकात अल्फ्रेड पार्क में होनी थी। दल के अपने ही एक साथी वीरभद्र तिवारी ने इसकी सूचना पुलिस को दे दी तथा पुलिस को लेकर नॉट बाबर पार्क में पहुंच गया। आज़ाद को ज्यों ही इस बात की भनक लगी उन्होंने सबसे पहले उस व्यापारी को वहां से सुरक्षित बाहर निकाला और स्वयं पुलिस का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गए। **बहुत से पुलिस वाले आजाद के अचूक निशाने का शिकार हुए। पुलिस वाले उन्हें जीवित पकड़ना चाहते थे मगर आजाद ने जीवित न पकड़े जाने की कसम खा रखी थी अतः जब पिस्तौल में अन्तिम गोली बची तो उन्होंने उसे अपनी ही कनपटी पर दाग़ दिया। इस प्रकार एक अद्‌भुत क्रांन्तिकारी 27 फरवरी, 1931 को प्रातः साढ़े दस बजे वीरगति को प्राप्त हो गया।**

पुलिस वाले आज़ाद से इतने अधिक आतन्कित थे कि मरा हुआ जानने के लिए उन्होंने उनके मृत शरीर पर भी गोली दागी़। जब उससे कोई हलचल न हुई तभी आजाद के शव को पुलिस छू सकी। पण्डित मदनमोहन मालवीय जी आजाद की अन्त्येष्टि पूरे सम्मान के साथ करना चाहते थे तथा इसके लिए उन्होंने काशी के पण्डित शिव विनायक मिश्र को इलाहाबाद भेजा था। उन्हीं की प्रेरणा से एक बहुत बड़ा जलूस निकाला गया जिसमें राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन तथा श्रीमती कमला नेहरू ने भी भाग लिया।

10. सरदार भगत सिंह

मात्र तेईस वर्ष की आयु में स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने आप को आहुत करके अमर होने वाले भगतसिंह को देशभक्ति विरासत में ही मिली थी। इनके दादा सरदार अर्जुनसिंह स्वयं कट्टर देशभक्त थे क्योंकि जालन्धर नगर में इन्होंने महर्षि दयानन्द जी के दर्शन किए और उनकी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित होकर ये आर्यसमाज के साथ मन, वचन और कर्म से जुड़ गए थे। यह संस्था उन दिनों भारतवर्ष को स्वतंत्रता दिलाने के लिए अग्रणी थी। सरदार अर्जुनसिंह जी का जन्म जिला जालन्धर के खटकर कलां गांव के सरदार खेमसिंह सिन्धु जी के यहां हुआ। सरदार खेमसिंह जी के तीन पुत्र थे—सुर्जनसिंह, अर्जुनसिंह और मेहरसिंह। इनमें से सरदार अर्जुनसिंह जी भगतसिंह जी के दादा थे। सरदार अर्जुनसिंह एक असाधारण व्यक्तित्व के मालिक थे। जालन्धर में आर्यसमाज ने साईंदास ने स्कूल खोला तो अर्जुनसिंह जी ने अपने दो पुत्रों किशनसिंह और अजीतसिंह को उस स्कूल में प्रवेश दिलाया। इन्होंने अपने पुत्रों को देशभक्ति का पाठ भी पढ़ाया। अर्जुनसिंह और अजीतसिंह आगे चलकर क्रांतिकारी बने और देश सेवा के लिए अपने आप को आहुत कर दिया। पंजाब के किसानों में देशभक्ति की भावना भरने के आरोप में अजीतसिंह को अंग्रेज़ सरकार ने लाला लाजपतराय के साथ निष्कासित करके माण्डले के दुर्ग में बन्दी बना दिया था और इधर किशनसिंह ने क्रांति की मशाल को हमेशा जलाए रखा। ग्यारह वर्ष की आयु में किशनसिंह जी का विवाह विद्यावती जी से हुआ। उनकी पत्नी विद्यावती का भी स्वतंत्रता आन्दोलन में भारी सहयोग रहा है।

विवाह के तुरन्त बाद ही ये लोग लायलपुर आ गए। भगतसिंह जी का जन्म इसी क्रांतिकारी परिवार में सरदार किशनसिंह तथा विद्यावती के यहां 28 सितम्बर, 1907 को हुआ। जिस दिन उनका जन्म हुआ इनके पिता किशनसिंह और छोटे चाचा स्वर्णसिंह उसी दिन जेल से छुटकर आए थे। भगतसिंह बचपन में हंसमुख, सुन्दर तथा शरीर से बलिष्ठ थे। क्रांतिकारी मित्र मेहता आनन्द किशोर और किशनसिंह आमों का बग़ीचा लगाने के लिए भूमि तैयार कर रहे थे। अढ़ाई तीन वर्ष का बालक भगतसिंह भी उनके साथ था। भगतसिंह ने तुरन्त अपनी अंगुली छुड़ाई और मिट्टी में पौधों की भान्ति तिनके गाड़ने लगा। पिता ने सहजता से पूछा भगतसिंह यह क्या कर रहे हो? वह होनहार बालक सहजता से बोला कि मैं बन्दूकें बो रहा हूं। उस अल्पायु में उस बालक के मुख से इस प्रकार का वाक्य निकलना ही मानों उसके क्रांतिकारी भविष्य की घोषणा कर रहा था। निष्कासित सरदार अजीतसिंह की पत्नी वीरांगना हरनाम कौर की गोद में खेलते-खेलते ये क्रांतिकारी भाव निरन्तर तीव्र से तीव्रतर होते चले गए। उनके पिता ने उनके समस्त संस्कार विधिवत वैदिक रीति से वैदिक विद्वानों से कराए। भगतसिंह जी का यज्ञोपवीत संस्कार सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान तथा अन्तरिक्ष में प्रथम भारतीय के रूप में जाने वाले राकेश शर्मा के दादा तर्कवाचस्पति लोकनाथ जी द्वारा सम्पन्न कराया गया था। पढ़ाई में तो भगतसिंह अत्यधिक प्रतिभाशाली थे ही मगर वे एक अच्छे खिलाड़ी भी थे और अत्यधिक मिलनसार भी। वे अपने अध्यापकों के भी बहुत प्यारे थे। उनकी मिलनसारिता के कारण हर कोई सहजता से ही उनका मित्र बन जाता था। बंगा से चौथी कक्षा पास करके भगतसिंह नवांकोट,

लाहौर में आ गए। यहां सरदार किशन सिंह जी ने उन्हें डी. ए.वी. स्कूल में प्रवेश दिलाया। वहां भगतसिंह को लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल तथा सूफ़ी अम्बा प्रसाद आदि का क्रांतिकारी साहित्य पढ़ने को मिला। लाहौर उन दिनों क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र था अतः इस मेधावी बालक के हृदय में भी देश के लिए कुछ विशेष करने की भावना उद्वेलित होती रही। घर का वातावरण तो निरन्तर क्रांतिकारी था ही।

उन्हीं दिनों गांधी जी ने देशवासियों के सामने असहयोग आन्दोलन की गुहार लगाई तथा देखते ही देखते उस आन्दोलन ने बहुत बड़ा रूप ले लिया। भगतसिंह का मन भी इस असहयोग आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ। इसी बीच अमृतसर जलियांवाला बाग़ का नरसंहार हुआ। जनरल डायर ने निहत्थे भारतीयों को मशीनगनों और गोलियों से भून डाला। अगले दिन भगतसिंह घर से स्कूल को निकले मगर जलियांवाला बाग पहुंच गए। यहां-वहां लहु को देखा तथा रक्त से सनी कुछ मिट्टी एक शीशी में भर लाए। कई दिनों तक इस रक्तरंजित मिट्टी की घर में वन्दना करते रहे। भीतर ही भीतर भगतसिंह के मन में इन्कलाब की भावना तीव्र होती गई। अन्ततः उन्होंने अपने मन की बात अपने एक मित्र जयदेव गुप्त द्वारा अपने पिता तक पहुंचाई। जन्मजात क्रांतिकारी किशनसिंह ने भगतसिंह को तुरन्त अनुमति दे दी और भगतसिंह नवीं कक्षा की पढ़ाई छोड़ असहयोग आन्दोलन में सक्रिय हो गए। अपने मित्रों की एक टोली बनाकर उन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। जब गांधी ने चौरीचौरा की हिंसक घटना के कारण अपना आन्दोलन वापस ले लिया तो इससे भगतसिंह के मन को बहुत ठेस लगी। उनके मन में

यह बात घर कर गई कि इस प्रकार गिड़गिड़ाकर तथा अहिंसा के बल पर स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती है। उन्हें मदनलाल ढींगरा, वीर सावरकर तथा करतारसिंह सराभा आदि वीरों का मार्ग अधिक उपयुक्त लगा और उन्होंने भी मन ही मन यही मार्ग चुनने का संकल्प ले लिय। कुछ समय बाद उन्हें पढ़ाई के लिए नेशनल कालेज में भर्ती कराया गया। जहां उन्हें भाई परमानन्द, जयचन्द्र विद्यालंकार, आचार्य उदयवीर शास्त्री आदि प्राध्यापकों और प्राचार्य जुगलकिशोर जी का सान्निध्य मिला। वहां पर उन्होंने क्रांतिकारी साहित्य का भी खूब अध्ययन किया। इसी बीच इनके भाई जगत सिंह का निधन हो गया। यह दुःख परिवार के लिए असह्य था विशेषकर दादा-दादी को बहुत अधिक सदमा लगा। दादी जयकौर ने भगतसिंह का विवाह करने का परामर्श दिया। उनके परामर्श को टालने का कोई साहस नहीं कर सका अतः भगतसिंह की सगाई की तैयारी होने लगी। एक सम्पन्न परिवार से रिश्ता भी आ गया मगर क्रांतिवीर शचीन्द्र सान्याल जी की प्रेरणा से भगतसिंह ने विवाहसूत्र को क्रांति के मार्ग में एक बाधा माना। सान्याल जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उन्हीं की प्रेरणा से भगतसिंह ने अविवाहित रहने का निर्णय लिया था। विवाह बन्धन में बंधने से बचने के लिए उन्होंने घर का त्याग कर दिया। जाती बार अपने पिता जी के नाम एक पत्र लिखकर छोड़ गए। पत्र में लिखा था—'मेरा जीवन एक उच्च लक्ष्य अर्थात् भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए अर्पित हो चुका है। अतः मेरे जीवन में सुख व सांसारिक वासनाएं आकर्षण का कारण नहीं हैं। आपको स्मरण होगा कि जब मैं छोटा था तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत संस्कार के समय यह घोषणा की थी कि मुझे

देश सेवा के लिए समर्पित कर दिया गया है। अतः मैं उस समय की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूं। आशा है आप मुझे क्षमा कर देंगे।

काकोरी काण्ड से कुछ समय पूर्व ही लाहौर पर अंग्रेज़ों की कड़ी नज़र थी इसलिए भगतसिंह कानपुर आ गए। वहां पर भगतसिंह का परिचय योगेशचन्द्र चटर्जी, विजय कुमार सिन्हा और बटुकेश्वर दत्त आदि क्रांतिकारियों से हुआ। कानपुर में उन दिनों तेजस्वी पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी जी 'प्रताप' में कार्यरत थे और क्रांतिकारियों के आश्रयस्थल एवं प्रेरणास्रोत भी थे। भगतसिंह जी आचार्य उदयवीर शास्त्री से उनके नाम परिचय पत्र ले आए थे। भगतसिंह जी ने लगभग तीन महीने प्रताप में बलवन्त सिंह नाम से कार्य किया, उसके बाद अंग्रेज सिपाहियों को उनका पता चल गया। मगर वे उनकी पकड़ में आने से पूर्व ही वहां से चले गए। वहां भगतसिंह जी ने अपनी कर्मठता और प्रतिभा की अप्रतिम छाप छोड़ी। बलबन्तसिंह नाम से ही उन्होंने कुछ दिन दैनिक अर्जुन में भी कार्य करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। इस प्रकार भगतसिंह जी छद्म नाम से पत्रकारिता का कार्य करते रहे मगर साथ ही क्रांतिकारी गतिविधियों से भी निरन्तर जुड़े रहे। अन्ततः पुनः लाहौर आकर उन्होंने "नौजवान भारत सभा" की स्थापना की जिसके प्रधान श्री रामचन्द्र बी.ए. और मंत्री स्वयं भगतसिंह जी बने। प्रसिद्ध क्रांतिकारी भगवतीचरण वोहरा इसके प्रचार मंत्री बनाए गए। इस सभा ने क्रांतिकारियों को एक मंच देने का महत्वपूर्ण कार्य किया। सन् 1925 में काकोरी काण्ड के माध्यम से जब कुछ क्रांतिकारियों ने ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी और रामप्रसाद बिस्मिल आदि क्रांतिकारी पकड़े गए तो भगतसिंह ने उन्हें छुड़ाने के

लिए प्रयास किया। उधर पुलिस इस ताक में थी कि भगतसिंह को भी इस काण्ड के साथ जोड़कर बन्दी बनाया जाए। इसीलिए अमृतसर में उन्हें पकड़ने का उस समय प्रयास किया गया जब वे अपने दल के किसी कार्य को करने के बाद अपने घर लौट रहे थे। ज्यों ही वे स्टेशन से बाहर निकले तो एक पुलिस वाला उनके पीछे लग गया। वे तेज़ी से भागे मगर पुलिस वाला भी उतनी ही तेज़ी से उन्हें पकड़ने के लिए भागा। भगतसिंह जी एक गली में घुस गए तथा तुरन्त एक वकील सरदार शर्दूल सिंह जी के घर में घुस गए। पुलिस वाले ने घर के मालिक शर्दूल सिंह से पूछा कि आपने यहां किसी युवक को तो नहीं देखा? वकील ने पूछा—वही तो नहीं जिसने कोट-पेण्ट डाल रखी है? पुलिस ने कहा-हां-हां वही। वह बहुत बड़ा चोर है कहां है वह? वकील ने पंजाब से निकलने वाले मासिक 'कीर्ति' के कार्यालय की ओर संकेत करते हुए कहा उसे तो मैंने उस ओर भागते हुए देखा है। इस प्रकार एक वकील की चतुरता से वे पुलिस द्वारा पकड़े जाने से बच गए। मगर ज्यों ही वे लाहौर पहुंचे उन्हें बन्दी बना लिया गया। उन्हें तरह-तरह की यातनाएं दी गईं मगर अन्ततः चतुर वकीलों के प्रयासों से भगतसिंह जी साठ हज़ार रूपये की ज़मानत पर रिहा हो गए। भगतसिंह का अभियोग अंग्रेज़ी सरकार ने जानबूझकर लम्बा खैंचा ताकि भगतसिंह की क्रांतिकारी गतिविधियों पर रोक लगी रह सके।

क्रांतिकारियों ने 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन' का गठन करके उसकी बागडोर भगतसिंह के हाथ में दी। दिल्ली में सम्पन्न हुई एक बैठक में विभिन्न प्रान्तों के साथ सम्पर्क रखने के लिए भगतसिंह को नियुक्त किया गया। बालों के कारण उन्हें जल्दी पहचान लिया जाता

था। इसलिए उन्होंने फिरोजपुर आकर अपने बाल कटवा दिए। सांडर्स की हत्या से कुछ समय पूर्व भगतसिंह जी कलकत्ता गए और वहां यतीन्द्रनाथ दास और फणीन्द्रनाथ घोष के साथ मिलकर आर्य समाज में गन काटन का निर्माण किया। सन् 1927 के अन्त में अंग्रेज़ सरकार ने घोषणा की कि ब्रिटिश संसद के निर्णय के अनुसार भारत में एक कमीशन आएगा। लार्ड साइमन नाम का एक अंग्रेज़ इस आयोग का अध्यक्ष था। फ़रवरी, 1928 में आयोग मुम्बई पहुंचा। 'साइमन कमीशन गो बैक' के गगनभेदी नारों और काले झण्डों से उसका स्वागत हुआ। तीस अक्टूबर को यह कमीशन लाहौर पहुंचने वाला था। लाला लाजपतराय जी हिन्दू महासम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए 27-28 अक्टूबर को इटावा गए हुए थे। कमीशन के आने से पूर्व ही वे वहां से लौट आए। देशभर में कमीशन का प्रबल विरोध हुआ। मद्रास में पुलिस ने गोली चलाई जिसमें तीन व्यक्ति वीरगति को प्राप्त हुए। भगतसिंह जी का प्रस्ताव था कि जैसे सोलह वर्ष पूर्व लार्ड हार्डिंग की सवारी पर बम फैंका गया था वैसे ही साइमन कमीशन पर बम फैंक कर राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया जाए। प्रस्ताव तो पारित हो गया मगर साधनों के अभाव में सिरे न चढ़ सका। लाहौर स्टेशन पर लाला लाजपतराय जी के नेतृत्व में अपार जनसमूह ने कमीशन का विरोध किया। भगतसिंह तथा उनके पिता सरदार किशन सिंह आदि क्रांतिकारी भी वहां मौजूद थे। अंग्रेज सिपाहियों ने पहले तो जनता पर और फिर क्रांतिकारियों पर लाठी चार्ज किया। लाला लाजपतराय जी इससे इतने अधिक घायल हुए कि 17 नवम्बर को ये नरपुंगव वीरगति को प्राप्त हो गए। वीरगति को प्राप्त होने से पूर्व उन्होंने गरजना करते हुए कहा था—'मेरे शरीर पर

लगी एक-एक लाठी भारत में अंग्रेजी राज के कफन का कील सिद्ध होगी। उस महामानव की यह घोषणा अक्षरशः सिद्ध हुई क्योंकि उसके बाद ही क्रांतिकारियों की गतिविधियां अपनी चरम सीमा पर पहुंची और अंग्रेजों को भारत से भागना पड़ा।

भगतसिंह आदि युवकों ने लाला जी की हत्या का बदला लेने की प्रतिज्ञा ली और ठीक एक महीने बाद अर्थात् 17 दिसम्बर को भगतसिंह जी की पिस्तौल से निकली पांच गोलियों ने उस साण्डर्स को भून डाला जो लाला जी की हत्या का कारण था। उसके तुरन्त बाद भगतसिंह, राजगुरू और चन्द्रशेखर पुलिस कार्यालय के ठीक सामने डी.ए.वी. कालेज में घुस गए तथा वहां से दो मोटर साइकिलों पर बैठकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर सुरक्षित पहुंच गए। अगले ही दिन दीवारों पर पोस्टर चिपके हुए थे—'जे.पी. साण्डर्स की मृत्यु से लाला लाजपतराय की हत्या का बदला ले लिया गया। भगतसिंह तथा राजगुरू को भगवतीचरण वोहरा जी की पत्नी दुर्गाभाभी जी सुरक्षित कलकत्ता ले गई। उन्होंने हैट लगाए हुए भगतसिंह की पत्नी बनने का नाटक किया। साथ में उनका बच्चा और नौकर के रूप में पीछे-पीछे राजगुरू थे। चन्द्रशेखर जी भी रामनामी चादर ओढ़कर उसी डब्बे में थे। कलकत्ता में भगतसिंह जी पहले एक होटल में फिर सेठ छज्जु राम जी की कोठी में रहे मगर बाद में सुरक्षा की दृष्टि से वे आर्यसमाज में आ गए। भगतसिंह जी का हैट वाला ऐतिहासिक चित्र उन्हीं दिनों कलकत्ता में लिया गया था। अपने कलकत्ता प्रवास के इन्हीं दिनों में भगतसिंह जी ने असेम्बली में बम फेंकने का निर्णय लिया था।

अब तक कांग्रेस की नीतियों और क्रांतिकारी गतिविधियों

के समूचे आकलन से भगतसिंह जी इस परिणाम पर पहुंचे थे कि स्वतंत्रता के लिए नवयुवकों को आहुत होने की नित्तान्त ज़रूरत है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे ऐसा कुछ करना चाहते थे जिससे जन-जन अपने आप को देश पर आहुत करने के लिए तैयार हो जाए। आठ अप्रैल, 1929 को असेम्बली में दो बिल पारित किए जाने थे। एक जनसुरक्षा बिल और दूसरा औद्योगिक विवाद बिल। इन बिलों को पारित करने में सरकार की नीयत साफ़ नहीं थी। असल में पहले बिल के द्वारा वह क्रांति को दबाना चाहती थी और दूसरे के द्वारा श्रमिकों को हड़ताल करने के अधिकार से वंचित करना चाहती थी। इसीलिए भगतसिंह जी ने असेम्बली में बम फेंकने की योजना बनाई। असेम्बली में बिल पारित होते ही बटुकेश्वर दत्त और भगतसिंह ने दो बम फैंके और साथ ही हवा में कुछ गोलियां भी चलाईं। सभी लोग इस घटना से स्तंभित रह गए। असेम्बली में धुआं फैल गया। कुछ लोग भागे तो कुछ सहम कर दुबके रहे। धुआं साफ़ हुआ तो हाल में दो युवकों को हंसते हुए देखा गया। ये भारत मां के सपूत थे बटुकेश्वर दत्त और भगतसिंह। इन दो शेरों को किसी की भी पकड़ने की हिम्मत नहीं हुई और न ही बचने के लिए ये युवक भागे। वे चाहते थे बड़ी आसानी से भाग सकते थे मगर उनका लक्ष्य कुछ और था। अन्ततः एक अंग्रेज़ इंस्पेक्टर ने उन्हें पकड़ लिया मगर वे अपने मन्तव्य में सफल रहे क्योंकि इस घटना ने जन-जन को वास्तव में ही स्वंतत्रता प्राप्ति के लिए व्यग्रता के साथ आन्दोलित कर दिया। इस घटना में पुलिस वालों ने 31 व्यक्तियों को संलिप्त पाया जिनमें से 24 को गिरफ़्तार किया गया। 'लाहौर षडयन्त्र अभियोग' नाम से अभियोग का नाटक चला। हालांकि भगतसिंह जी

नहीं चाहते थे मगर सरदार किशनसिंह जी ने उन्हें बचाने के जी-तोड़ प्रयास किए। क्रांतिकारियों ने भी अपने साथियों को जेल से निकालने की एक योजना बनाई थी। मगर वह कार्यान्वित नहीं हो सकी। भगतसिंह और उनके साथियों ने अच्छे भोजन और व्यवस्था के लिए जेल में भी भूख हड़ताल की।

अन्ततः अभियोग का ड्रामा समाप्त हुआ और पकड़े गए क्रांतिकारियों में से भगतसिंह, राजगुरू तथा सुखदेव को 24 मार्च को फांसी देने का निर्णय हुआ। लेकिन अंग्रेज़ सरकार को इन्हें फांसी दिए जाने पर जनाक्रोश और आन्दोलन का इतना भय था कि चुपके से 23 मार्च को सायं सात बजकर पैंतीस मिनट पर ही इन्हें फांसी दे दी गई और चुपचाप इनके शवों का संस्कार भी कर दिया गया। भले ही अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें फांसी के तख्ते पर लटका दिया हो मगर क्रांतिकारी कभी मरा नहीं करते हैं। इसलिए आज भी प्रत्येक भारतीय ने अपने हृदय में कृतज्ञता और श्रद्धा के साथ इन स्मृति को प्रतिष्ठापित किया हुआ है। आगे आने वाली संतति भी उनके प्रति निश्चित रूप से उन्हें अपने हृदयों में उसी श्रद्धा के साथ स्थान देती रहेगी.....

11. पं. रामप्रसाद बिस्मिल

अनुपम क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल का जन्म वर्तमान उत्तरप्रदेश के शाहजहांपुर नगर में श्री मुरलीधर जी के यहां ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी को सम्वत् 1954 में हुआ। लगभग सात वर्ष की आयु में इनकी शिक्षा आरंभ हुई। जब ये पांचवीं कक्षा में पढ़ते थे तो कुसंगति में पड़ जाने के कारण इन्हें बहुत सी गन्दी आदतें पड़ गईं। लेकिन सौभाग्य से उन आदतों से इन्हें शीघ्र ही मुक्ति मिल गई। आर्यसमाज मन्दिर घर के पास ही था तथा वहां पर वैदिक विद्वान मुंशी इन्द्रजीत जी का आना-जाना लगा रहता था। उन्होंने एक दिन बिस्मिल को वैदिक संन्ध्या सिखाई तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का सत्यार्थप्रकाश पढ़ने के लिए दिया। इस अद्भुत ग्रन्थ को पढ़कर बिस्मिल का मानों जीवन ही बदल गया। इस सम्बन्ध में बिस्मिल स्वयं लिखते हैं—'सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में नवीन पृष्ठ खोल दिए। मैं तख्त पर कम्बल बिछाकर सोता और प्रातः चार बजे ही जागकर शौच, स्नान व संध्या से निवृत होकर व्यायाम करता। इस ग्रन्थ को पढ़कर जहां उन्हें जीवन के महत्व का ज्ञान हुआ वहीं उनके भीतर देशभक्ति के अंकुर भी दृढ़ता के साथ प्रस्फुटित हुए। इनके पिता जी कट्टर पौराणिक थे अतः उन्हें रामप्रसाद का आर्यसमाज में आना-जाना अच्छा नहीं लगता था। एक बात यह भी थी कि उन दिनों आर्यसमाजी होने का अर्थ था क्रांतिकारी होना। यही कारण है कि आर्यसमाज पर अंग्रेज़ सरकार की सदा कुदृष्टि रहती थी। एक दिन पिता ने कह दिया कि वह आर्यसमाज जाना छोड़ दे। बिस्मिल ने इस बात से मना किया। पिता जी ने ऐसा न करने पर उन्हें घर छोड़ देने के लिए कह दिया, बिस्मिल को आर्यसमाज अपेक्षा घर

छोड़ना स्वीकार्य हुआ तथा घर छोड़ने से पूर्व वे पिता जी के पांव छूने के लिए बढ़े। पिता जी ने क्रोध में आकर उनके कपड़े भी छीन लिए तथा बिस्मिल मात्र एक लंगोट पहनकर घर से निकल पड़े। बिस्मिल की इस दृढ़ता का उनके पिता जी पर भी असर हुआ तथा बाद में वे अपने पुत्र को घर वापस ले आए।

जब वे आठवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तो संयोग से बिस्मिल का सम्पर्क स्वामी सोमदेव जी से हुआ। सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन तथा आर्यसमाज में जाने से उनके भीतर देशभक्ति के जो संस्कार स्थापित हुए थे, स्वामी सोमदेव जी के सम्पर्क में जाने पर वे और अधिक पल्वित तथा दृढ़ हो गए। स्वामी जी के सम्पर्क में आकर बिस्मिल ने अपने जीवन को पूर्णतय बदल लिया। उन्हीं दिनों सन् 1916 में स्वामी जी के समीपी एवं परिचित भाई परमानन्द जी को अंग्रेज़ सरकार ने लाहौर षडयंत्र केस में मृत्यु दण्ड देने की घोषणा की, जिससे स्वामी सोमदेव तथा बिस्मिल के हृदय में अंग्रेज़ सरकार के प्रति तीव्र आक्रोश और घृणा पैदा हो गई। उन्हीं दिनों एक दिन दैनिक संध्या के बाद बिस्मिल ने स्वामी जी के सामने ही अंग्रेज़ी राज्य को उखाड़ फेंकने की प्रतिज्ञा की। भाई परमानन्द जी को फांसी की सजा घोषित होने की ख़बर सुनने के बाद की प्रतिक्रिया के बारे में बिस्मिल जी लिखते हैं—'भाई परमानन्द जी को फांसी की सज़ा पढ़कर मेरे शरीर में आग लग गई। मैंने विचारा कि ये अंग्रेज़ बड़े अत्याचारी हैं, जो इतने बड़े महानुभाव को भी फांसी की सजा का हुक्म दे दिया। मैंने प्रतिज्ञा की कि इसका बदला अवश्य लूंगा। जीवन भर अंग्रेज़ी राज्य के विध्वसं करने का प्रयत्न करता रहूंगा। उसी दिन से मेरे क्रांतिकारी जीवन का सूत्रपात हुआ। स्वामी जी के यह कहने पर कि प्रतिज्ञा लेना तो बड़ा सरल होता है मगर उसे निभाना बहुत कठिन

होता है, बिस्मिल ने कहा—'यदि श्री चरणों की कृपा बनी रही तो इस प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए जीवन के अन्तिम श्वास तक किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने दूंगा।' स्वामी जी की प्रेरणा से ही उन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहने की भी प्रतिज्ञा की।

सन् 1916 को लखनऊ में हुए ऐतिहासिक कांग्रेस अधिवेशन के समय बिस्मिल जी वहां उपस्थित थे। आयोजकों को सूचना मिली कि तिलक जी स्पेशल ट्रेन से कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए लखनऊ आ रहे हैं। यह सूचना प्रत्येक के लिए उत्साहवर्धक और स्फूर्तिदायक बन गई। उनके स्वागत की तैयारी होने लगी मगर गर्म दल और नरम दल में तीव्र मतभेद हो गया कि स्वागत मात्र स्टेशन पर हो या उनका जलूस निकाला जाए। साफ़ था कि यदि जलूस निकाला गया तो जनता जनार्दन कांग्रेस-अध्यक्ष के जलूस से अधिक तिलक के शानदार जलूस का स्वागत करेगी। यह अध्यक्ष का अपमान होगा। फलतः स्वागत समिति की बैठक हुई। निर्णय लिया गया कि तिलक जी का स्वागत केवल स्टेशन पर ही किया जाएगा, शहर में सवारी नहीं निकाली जाएगी। बिस्मिल आदि क्रांतिकारियों ने निर्णय लिया कि जैसे ही लोकमान्य स्पेशल ट्रेन से उतरें, उन्हें घेर कर कार में बिठा लिया जाए और सवारी निकाली जाए। लोकमान्य के स्वागतार्थ लखनऊ स्टेशन पर जनता का अपार समूह उपस्थित था। तिलक जी की जय जय कार से मानों गगन फटा जा रहा था। जनता अपने प्रिय नेता की जयकार के द्वारा ब्रिटिश सरकार के प्रति अपना रोष प्रकट कर रही थी। स्पेशल ट्रेन आई तथा ज्यों ही लोकमान्य जी नीचे उतरे नरम दल वालों ने उनका अभिवादन-अभिनन्दन किया और पलक झपकते ही कांग्रेस स्वयंसेवकों ने घेरा डालकर उन्हें कार में बिठवा दिया। बिस्मिल तथा उनके साथियों की योजना धरी ही रह गई, पर वे भी हार मानने वाले नहीं थे। जैसे ही मोटर

स्टार्ट होने लगी वैसे ही बिस्मिल तथा एक छात्र मोटर के आगे लेट गए। नरम दल के नेता उन्हें फटकारने लगे तो बिस्मिल ने अवरूध कण्ठ से कहा–'मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ। इसी बीच बिस्मिल के कुछ साथी एक घोड़ागाड़ी ले आए। लोकमान्य जी को उसमें बिठा और बिस्मिल तथा उनके अन्य साथी गाड़ी को खींचने लगे...।

इस घटना के बाद बिस्मिल को भी अन्य क्रांतिकारियों की तरह इस बात का अनुभव हो गया कि कांग्रेस की ढिल मुल नीति से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती है। इसके लिए बलिदान देने होंगे। यहां पर कुछ अन्य क्रांतिकारियों से भी बिस्मिल का सम्पर्क हुआ तथा उन्होंने सम्पूर्ण संयुक्त प्रान्त के क्रांतिकारियों के संगठन की कमान संभाली और सक्रियता के साथ काम करने लगे। उनके सामने जो सबसे बड़ी समस्या आई वह थी आर्थिक अभाव की। भूखे पेट और चन्ने या मात्र सत्तू आदि खाने से कब तक काम चल सकता था और फिर अंग्रेज़ों से लड़ने के लिए हथियारों की भी ज़रूरत थी तथा हथियार खरीदने के लिए भी धन चाहिए था। अन्ततः धन प्राप्त करने के लिए सरकारी कोष को लूटने की योजना बनी। तय हुआ कि सहारनपुर से लखनऊ जाने वाली रेलगाड़ी में रखे कोष को लूटा जाए। इस काम को 9 अगस्त, 1925 को काकोरी नामक स्थान पर अंजाम दिया गया। इस सम्बन्ध में बिस्मिल जी ने इस प्रकार लिखा है–'..... दस युवकों को लेकर विचार किया कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, स्टेशन के तारघर पर अधिकार कर लें और गाड़ी का सन्दूक उतार कर तोड़ डालें, जो कुछ मिले उसे लेकर चल दें परन्तु इस कार्य में मनुष्यों की अधिक संख्या की आवश्यकता थी। इसी कारण यही निश्चय किया कि गाड़ी की जंजीर खींचकर चलती गाड़ी को खड़ा करके तब लूटा जाए। संभव है कि

तीसरे दर्जे की ज़ंजीर खींचने से गाड़ी न खड़ी हो क्योंकि तीसरे दर्जे में प्रबन्ध बहुत ठीक नहीं रहता है। इस कारण से दूसरे दर्जे की जंजीर खींचने का प्रबन्ध किया। सब लोग उसी ट्रेन में सवार थे। गाड़ी खड़ी होने पर सब उतरकर गार्ड के डिब्बे के पास पहुंच गए। लोहे का सन्दूक उतार कर छेनियों से काटना चाहा, छेनियों ने काम न किया तब कुल्हाड़ा चला।

मुसाफिरों से कह दिया कि सब गाड़ी में चढ़ जाओ। गाड़ी का गार्ड गाड़ी में चढ़ना चाहता था, पर उसे जमीन पर लेट जाने की आज्ञा दी ताकि बिना गार्ड के गाड़ी न जा सके। दो आदमियों को नियुक्त किया कि वे लाइन की पगडण्डी को छोड़कर घास में खड़े होकर गाड़ी से हटे हुए गोली चलाते रहें.....मैंने यथाशक्ति पूर्ण प्रबन्ध किया था कि जब तक कोई बन्दूक लेकर सामना करने न आए या मुकाबले में गोली न चले तब तक किसी आदमी पर फ़ायर न होने पाए। मैं नर-हत्या कराके डकैती को भीषण रूप देना नहीं चाहता था।....सन्दूक तोड़कर तीन गठरियों में थैलियां बांधीं। ....और उसी समय लखनऊ शहर जा पहुंचे। किसी ने पूछा भी नहीं कि कौन हो? कहां से आ रहे हो? इस प्रकार दस आदमियों ने एक गाड़ी को रोक कर लूट लिया। उस गाड़ी में चौदह मनुष्य थे, जिनके पास बन्दूक या राइफल थी। दो अंग्रेजी सशस्त्र फ़ौजी जवान भी थे, पर सब शान्त रहे। इस सफलता को देखकर मेरा साहस बहुत बढ़ गया.....इस घटना से भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बन्ध गई। नवयुवकों का भी उत्साह बढ़ गया। जितना कर्ज़ था, निपटा दिया। प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्ता को यथास्थान भेजकर दूसरे प्रान्तों में भी कार्य विस्तार करने का निर्णय करके कुछ प्रबन्ध किया। एक युवक दल ने बम बनाने का प्रबन्ध किया.....' इस प्रकार हम देखते हैं कि इस लूट का अभिप्राय न तो आतंक फैलाना था, न नर-संहार करना

और न ही अपना किसी प्रकार का स्वार्थ बल्कि लक्ष्य था क्रांतिकारी गतिविधियों को सक्रियता देने के लिए धन की प्राप्ति। भले ही बिस्मिल और उनके साथी इस उपलब्धि से बहुत उत्साहित थे मगर इस काण्ड से पूरी तरह बौखला गई अंग्रेज़ सरकार ने अपना दमन चक्र आरंभ कर दिया। अनुभवहीनता के कारण गिरफ़्तार हुए कुछ युवकों ने स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए मुखबरी करनी आरंभ कर दी। इस प्रकार अपने ही कुछ लोगों (बिस्मिल ने उन्हें आस्तीन के सांप कहा है) के कारण घटना के तीसरे दिन ही रामप्रसाद बिस्मिल को भी गिरफ़्तार कर लिया गया। अंग्रेज़ गुप्तचरों ने बिस्मिल को भी प्रलोभन दिया कि यदि वह सारे मामले की सही-सही जानकारी दे दे तो उसे पन्द्रह हज़ार रूपए दिए जाएंगे तथा इंग्लैंड भेजने का भी प्रबन्ध कर दिया जाएगा मगर भारत मां का यह सपूत भला इस प्रकार के प्रलोभनों में कहां आने वाला था। भारत मां की सेवा के लिए उसे तो भयंकर गर्मी और मच्छरों की मार सहते हुए मात्र नौ फुट लम्बी तथा नौ फुट चौड़ी कोठरी में भोजन, शयन, स्नान तथा मल-मूत्र त्याग करते हुए तिल-तिल होकर स्वयं को स्वाह करना था। जेल में इन्हें कठोरतम यातनाएं दी गई मगर उसमें भी वे साधुओं सा जीवन जीते रहे। अन्ततः इन्हें इनके अन्य साथियों अशफ़ाक उल्ला ख़ां, राजेन्द्र लाहरी तथा ठाकुर रोशनसिंह सहित फांसी की सज़ा सुनाई गई।

रामप्रसाद बिस्मिल के यदि हम गुणों का आकलन करें तो हम पाते हैं कि उनमें अद्‌भुत शारीरिक शक्ति थी। साइकिल चलाने और तैरने में सिद्धहस्त थे। बिना किसी थकावट के लगभग नब्बे किलोमीटर तक पैदल चल सकते थे। प्राणायाम का अभ्यास इतना विलक्षण था कि देखने वाले दंग ही रह जाते थे। वे केवल क्रांतिकारी ही नहीं थे बल्कि एक अच्छे

मित्र,प्रेरक, सिद्धहस्त लेखक तथा शायर और ग़ज़लकार भी थे। उनकी कुछ पुस्तकें इस प्रकार हैं—अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली, बोलशेविकों की करतूत, कैथेराइन, क्रांतिकारी जीवन, स्वदेशी रंग तथा मन की लहर (ग़ज़ल संग्रह)। इन्होंने श्री अरविन्द की बंगाली में लिखी 'यौगिक साधना' का अनुवाद भी किया था। अशफ़ाक उल्ला ख़ां इन्हीं के सम्पर्क में आकर क्रांतिकारी बनें तथा उन्हें वे अपने सहोदर से भी अधिक प्रेम करते थे। उनके बारे में वे अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए लिखते हैं.....सबको आश्चर्य होता था कि एक कट्‌टर आर्यसमाजी व एक मुसलमान का मेल कैसे? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। लोगों को भय था कि तुम कहीं इस्लाम धर्म त्यागकर शुद्धि न करवा लो। परन्तु तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते।' 'हिन्दू-मुसलमान एकता की यह मिसाल स्वर्ण अक्षरों में लिखने के योग्य है।' बिस्मिल जी इतने वीतराग तथा सच्चे-सुच्चे इन्सान थे कि इन्हें जेल से भाग जाने का अवसर भी जेलर के द्वारा प्रदान किया गया मगर यह सोचकर कि मेरे ऐसा करने पर जेलर पकड़ा जाएगा तथा उसके बच्चे अनाथ हो जाएंगे, पत्नी विधवा हो जाएगी...आदि, वापस जेल में ही लौट आए। फांसी की सज़ा के मात्र तीन दिन पूर्व इन्होंने जो अपनी आत्मकथा लिखी वह अत्यधिक रोचक प्रेरणाप्रद तथा इनके साधु हृदय एवं अद्‌भुत आत्मशक्ति की परिचायक है। मां के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए ये लिखते हैं—'.....जन्मदात्री जननी! यदि अनेक जन्मों में भी सारे जीवन भी प्रयत्न करूं तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मुझे स्मरण है कि किस प्रकार तुमने अपनी देववाणी से उपदेश देकर मेरा सुधार किया। तुम्हारी दया से ही मैं देश सेवा में संलग्न हो सका। महान् से महान् संकट में भी तुमने मुझे अधीर न होने दिया।' न्यायालय में

इन्होंने न्यायाधीश को सम्बोधित करते हुए कहा– '.....हम जानते हैं कि आप हमें क्या दण्ड देंगे। हम जानते हैं कि आप हमें फांसी दण्ड सुनाएंगे और हम जानते हैं कि यह वाणी जो अब बोल रही है कुछ दिन के पश्चात् बन्द हो जाएगी। हमारा बोलना, काम करना, हिलना यहां तक कि जीना और श्वास लेना भी इस सरकार के विरूद्ध है और न्याय के नाम पर शीघ्र मेरा गला घोट दिया जाएगा। मैं जानता हूं कि मैं मरूंगा परन्तु मैं मरने से नहीं घबराता....क्या इससे सरकार का उद्देश्य पूरा हो जाएगा? क्या इस प्रकार से भारत माता के वक्षस्थल पर विदेशियों का अत्याचार होता रहेगा? कदापि नहीं इतिहास इसकी साक्षी नहीं देता..... मैं मरूंगा परन्तु मैं चिता से फिर निकल आऊंगा और मातृभूमि का कल्याण करूंगा।'

जेल में भी इनका जीवन किसी सन्त-महात्मा से कम नहीं रहा–'मैं सर्दी, गर्मी, बरसात में प्रातः तीन बजे जगकर संध्या से निवृत होकर हवन करता था। मेरी दिनचर्या व नियमों का पालन देखकर पहरे के सिपाही अपने गुरू से भी अधिक मेरा सम्मान करते थे। बिस्मिल जी की दिनचर्या का यह क्रम उनके जीवन के अन्तिम दिन तक रहा। जिस दिन 19 दिसम्बर, 1927 को इन्हें फांसी दी जानी थी, उस दिन भी ये ठीक ब्रह्ममुहूर्त में उठे। आसन, व्यायाम तथा स्नानादि करके संध्या व हवन किया और फिर 'विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव।' इस वेद मंत्र का पाठ किया। फांसी के तख्ते का अंगीकार करते हुए उन्होंने स्वरचित पंक्तियां कहीं–

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूं और न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू बहे।
तेरा ही ज़िक्र और तेरी जुस्तजू रहे॥

12. अशफ़ाक उल्ला ख़ां

क्रांतिवीर अशफ़ाक उल्ला ख़ां का जन्म 22 अक्टूबर, सन् 1900 को हुआ। इनके पूर्वज पठान थे जो पहले पेशावर में रहते थे तथा बाद में उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर में आकर वस गए थे। इनके पिता जी का नाम मुहम्मद शफ़ीक उल्ला ख़ां तथा माता का नाम श्रीमती मज़हर उल-निसा बेगम था। अशफ़ाक अपने मां-बाप की पांचवीं और अन्तिम सन्तान थी। मुहम्मद शफ़ी उल्ला ख़ां, मुहम्मद रियासत उल्ला ख़ां तथा मुहम्मद शहनशाह खां नामक उनके तीन और भाई थे तथा एक बहिन थी जिसका नाम परवरिश बानो था। अशफाक उल्ला को घर में सभी अच्छू खान कहा करते थे। मां-बाप की अन्तिम सन्तान होने के कारण उन्हें परिवार का खूब लाड-प्यार मिला। इनका शरीर बचपन से ही बलिष्ठ था इसलिए इनका शरारती होना स्वाभाविक ही था। अक्सर ये अपने साथियों को पीट दिया करते थे मगर इनकी मां का अपने परिवार तथा मुहल्ले में बहुत दबदबा था। अशफ़ाक जी का ननिहाल बहुत ही समृद्ध तथा सम्पन्न था। उस खानदान के सभी लोग बहुत बड़े-बड़े पदों पर आसीन थे। अशफ़ाक कट्टर मुसलमान होते हुए भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे। उनका यह मानना था कि अंग्रेज़ सरकार को बाहर निकालने के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों को आपस में एकता दिखानी चाहिए तथा मिल-जुलकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना चाहिए। वे दोनों को ही भारत मां के बेटे मानते थे इसलिए उनकी दृष्टि में उन्हें आपस में वास्तविक भाईचारा दिखाने की ज़रूरत है। उन्होंने अपने जीवन में इस बात को सिद्ध करके भी दिखाया था।

आप शाहजहांपुर के निवासी थे और प्रसिद्ध क्रांतिकारी पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल भी शाहजहांपुर के ही थे। आप अपने नगर के मिशन स्कूल में पढ़ते थे। उन्हीं दिनों मेनपुरी

षडयंत्र केस में जब रामप्रसाद बिस्मिल के नाम वारण्ट निकले तो अशफ़ाक को इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई कि उन के नगर में भी कोई देशभक्त व्यक्ति है। बिस्मिल भूमिगत हो गए इसलिए वे पुलिस के हाथ नहीं आ सके तथा बाद में जब सब बन्दी छोड़ दिए गए तो बिस्मिल भी अपने नगर लौट आए। अशफ़ाक उनसे मिले और षडयंत्र के बारे में जानकारी प्राप्त करनी चाही मगर बिस्मिल टालमटोल ही करते रहे। बाद में वे अशफ़ाक के व्यक्तित्व से कुछ ऐसे प्रभावित हुए कि उनकी गहरी मित्रता हो गई। अशफाक भी क्रांतिदल के सदस्य बन गए तथा देश को स्वतंत्र कराने की दिशा में सक्रिय हो गए। उनके परिवार तथा सम्बन्धी जनों ने इसका विरोध किया मगर उस विरोध का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इन्हें काफ़िर तक भी कहा गया मगर देशभक्ति के लिए उन्होंने अपने प्रति इस विशेषण को भी चुपचाप स्वीकार कर लिया। इस सम्बन्ध में फांसी पर चढ़ने से तीन दिन पूर्व बिस्मिल जी ने जो आत्मकथा लिखी उसमें वे लिखते हैं—मुझे भली भांति याद है, जबकि मैं बादशाही ऐलान के बाद शाहजहांपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझ से मेनपुरी षडयंत्र के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझ से इस प्रकार बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। ...तुमने अपने इरादों को यूं ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। ....इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अन्त में तुम्हारी विजय हुई....थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किन्तु छोटे भाई बनकर तुम्हें सन्तोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की

श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ, तुम सच्चे मित्र बन गए। सब को आश्चर्य था कि कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमान का मेल कैसे? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्यसमाज मन्दिर में मेरा निवास था, किन्तु तुम इन बातों की किंचित मात्र चिन्ता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु तुम अपने निश्चय पर दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मन्दिर में आते-जाते थे। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होने पर तुम्हें मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुलमखुला गालियां देते थे। काफ़िर के नाम से पुकारते थे। पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिन्दु-मुस्लिम एकता के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा देशभक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमान को खुदा अक्ल देता कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर के हिन्दुस्थान की भलाई करते। .....तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर बहुतों को सन्देश होता था कि कहीं इस्लाम धर्म त्यागकर शुद्धि न करवा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते? तुम्हारी इसप्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्र मण्डली में बात छेड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुत बार मैंने तुमने एक थाली में भोजन किया। .... तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हां! तुम मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकते थे। तुम सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हें हृदयकम्प का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुंह से बारम्बार 'राम', 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े मित्र का आगमन हुआ तो राम के भेद को जानते थे। तुरन्त मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शान्ति हुई, तब सब लोग 'राम-राम' के भेद को समझे।

अन्त में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ? मेरे विचारों में तुम भी कट्टर क्रांतिकारी बन गए अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि किसी प्रकार हो मुसलमान नवयुवकों में भी क्रांतिकारी भावों को प्रवेश हो। वे भी क्रांतिकारी आन्दोलन में योग दें....मेरे साथ तुमने जो कार्य किए, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे। मुझे यदि शान्ति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफ़ाक उल्ला ने क्रांतिकारी आन्दोलन में योग दिया। अपने भाई-बन्धु तथा सम्बन्धियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तारी हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। ...प्यारे भाई, तुम्हें सन्तोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन सम्पत्ति को देश सेवा में अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया। जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य को भी देशसेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृसेवा में अर्पण करके अपना अन्तिम बलिदान भी दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफ़ाक को भी उसी मातृभूमि की भेंट चढ़ा दिया।'

रामप्रसाद बिस्मिल के अतिरिक्त सभी क्रांतिकारी अशफ़ाक उल्ला को इसलिए हमेशा शक की निगाह से देखते थे क्योंकि जनसाधारण की ऐसी धारणा थी कि उनके पूर्वजों ने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेज़ों का साथ दिया था। दसूरे अशफ़ाक के पिता मुहम्मद शफ़ीकउल्ला खां पुलिस में सब इंस्पैक्टर थे। लेकिन अशफ़ाक ने सिद्ध कर दिया कि वे भी सच्चे देशभक्त हैं। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—'मैंने अपनी कुर्बानी से इस धब्बे को, जो 1857 में मेरे ननिहाल के बुजुर्गों

ने अस्मते वतन पर लगाए थे, अपने खून से वह भी नौजवान के मासूम खून से धो डाला। क्या इसको इस खानदान का कुफारा (प्रायश्चित) समझा जा सकता है? अशफ़ाक चाहते थे कि उनके पूर्वजों के माथे पर जो कलंक सदा के लिए लग गया है वह मेरी देश-भक्ति तथा बलिदान से समाप्त हो जाए और उनका ख़ानदान भी देशभक्त माना जाए। उन्हें विश्वास था कि मेरी कुर्बानी के बाद मेरे खानदान को मेरे नाम से जाना जाएगा। वास्तव में ही इस अमर क्रांतिकारी ने देश-भक्ति की एक मिसाल कायम करके अपने समूचे खानदान का सिर सदा-सदा के लिए ऊंचा कर दिया। अपने व्यक्तित्व की तीन धाराओं का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—'मैं दादा की तरफ़ से कौम परस्त और ननिहाल की तरफ से अंग्रेज परस्त पैदा हुआ, मगर मां का खून कमज़ोर था, इसलिए वतनी आज़ादी का जज्बा ताकतवर रहा और वतन, प्यारे वतन के लिए आज मैं मौत के तख्ते पर खड़ा हूं।

अशफ़ाक तैराकी, घुड़सवारी तथा निशानेबाज़ी में बहुत निपुण थे। वे क्रिकेट और हॉकी के भी अच्छे खिलाड़ी थे। उनका शरीर बहुत बलिष्ठ तथा सुन्दर था। उनके सौन्दर्य पर लड़कियां बहुत आकर्षित होती थीं मगर वे चरित्र के बहुत धनी थे। एक बार जब वे राजस्थान में भूमिगत थे तो एक हिन्दू क्रांतिकारी अर्जुन के घर पर ठहरे हुए थे। उस परिवार से उन्हें बहुत अधिक स्नेह मिला। उसी परिवार की एक कन्या इन पर आसक्त हो गई। अशफ़ाक जी ने बहुत शालीनता के साथ उस कन्या के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया तथा उसे अपने क्रांतिकारी होने की बात बताकर उस वास्तविकता से परिचय कराया। कहते हैं कि बाद में जब उन्हें फांसी की सज़ा सुनाई गई तो इस सदमे को वह कन्या सहन नहीं कर सकी और कुछ काल के बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार

दिल्ली में एक इंजीनियर साहब की युवा पुत्री ने एक नौकरानी के हाथ पत्र देकर अपने प्रेम का इज़हार किया तो अशफ़ाक जी ने उसे भी पत्र द्वारा स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा कि उन्होंने तो अपने लिए आज़ादी की दुल्हन का चुनाव किया हुआ है जिसे ब्याहने के लिए फांसी की घोड़ी पर चढ़ना अनिवार्य है। अशफ़ाक जी साहित्यप्रेमी थे तथा स्वयं भी बहुत अच्छी शायरी करते थे। इन्होंने जिस कार्यालय में नौकरी की वहां के एक इंजीनियर भी शायरी करते थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि उनके कार्यालय में एक बाबू भी शायरी करता है तो वे अशफ़ाक जी को भी मुशायरों में ले जाया करते थे। मुसलमान तथा उर्दू के अच्छे कवि होने के बावजूद इन्हें हिन्दी से बहुत प्रेम था तथा उन्होंने हिन्दी में भी बहुत से पद्य लिखे। पुरानी परंपराओं के वे कभी दास नहीं रहे, पारिवारिक लोगों के विरोध के बावजूद इन्होंने अंग्रेज़ी सीखी और भावी पीढ़ी को अधिक से अधिक शिक्षा ग्रहण करने का आग्रह किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा—'जैसे ही हमने अंग्रेज़ी शुरू की हमारे ख़ानदान के लोगों में खलफ़िसार (झगड़ा) शुरू हो गया। चूंकि फ़िज़ाए ख़ानदान में अजीब किस्म के जरासीम मौजूद थे। इल्म से इन्हें नफ़रत, हाथ-पैर हिलाने से दुश्मनी और अंग्रेज़ी पढ़ने को कुफ़्र समझा जाता था। उनका मानना था कि अंग्रज़ी किताब को हाथ लगाने से हाथ अपिवत्र हो जाता है...।'

अशफ़ाक के हृदय में देश-प्रेम की भावना मानों कूट-कूट कर भरी हुई थी। गुलामी से उन्हें बहुत नफ़रत थी। सन् 1925 में बिस्मिल जी के सम्पर्क में आने पर उन्हें अपनी भावना को कार्यरूप देने का अवसर प्राप्त हुआ। शीघ्र ही ये बिस्मिल जी के विश्वसनीय तथा दाहिना हाथ बन गए। इधर क्रांतिकारियों के भोजन तथा हथियार आदि की व्यवस्था करने हेतु काकोरी नामक स्थान पर रेल रोककर सरकारी ख़ज़ाना लूटने की योजना

बनी तो एकमात्र अशफ़ाक को छोड़कर सभी क्रांतिकारियों ने इस योजना का समर्थन किया। उनके पास इसका बहुत ही सार्थक तर्क था– 'ट्रेन रोक कर सरकारी ख़ज़ाना लूट लेने के कारण क्रांतिकारी दल और ब्रिटिश सरकार में सीधा टकराव पैदा हो जाएगा, जो अभी तक नहीं है। सरकारी ख़ज़ाना लूटने के कारण वह सरकार को एक खुली चुनौती हो जाएगी और सरकार अपनी पूरी ताकत हमें मिटाने के लिए लगा देगी। ऐसी हालत में हम लोग अपनी आज़ादी की लड़ाई को आगे बढ़ाने के पहले ही खत्म हो जाएंगे और हमारा मकसद पूरा नहीं होगा। इसलिए मेरा विचार है कि हम लोग पहले अपनी बुनियाद को पुख्ता करें और फिर मौका पाकर हकूमत से सीधा टकराने की बात सोचें। मैं यह भी साफ़ कर देना चाहता हूं कि मेरे कहने का यह मतलब न लिया जाए कि मैं इस योजना से पीछे हटना चाहता हूं या डरता हूं। अगर मेरी बात न मानी गई और यह काम हाथ में लिया गया तो मैं पूरे जोश के साथ उसमें हिस्सा लूंगा। अशफ़ाक जी के तर्क अपने स्थान में बहुत सार्थक थे मगर इसके बावजूद ट्रेन को लूटा गया। अशफ़ाक जी लगभग एक वर्ष तक अंग्रेज़ सरकार की पुलिस को चकमा देते रहे। उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान होते हुए रूस पहुंचकर इंजीनियर बनने की योजना बनाई तथा पासपोर्ट बनाने के सिलसिले में दिल्ली आकर एक मित्र के यहां ठहरे। उस मित्र ने पुरस्कार के लालच में आकर इन्हें 8 नवम्बर, 1926 में गिरफ़्तार करवा दिया। न्याय का नाटक चला तथा 6 अप्रैल, 1927 को इन्हें रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिरी तथा ठाकुर रोशन सिंह जी सहित फ़ांसी की सज़ा सुनाई गई। न्यायालय में अशफ़ाक ने निर्भीकता के साथ कहा– 'जजों ने हमें निर्दयी, बर्बर, डाकू, हत्यारे और मानवता के लिए कलंक आदि कई विशेषणों से याद किया है। किन्तु हम पूछते हैं, क्या इन जजों

ने जलियांवाला बागं में डायर को गोली चलाते देखा अथवा सुना? क्या उसने निशस्त्र स्त्री, पुरूषों, बाल, वृद्ध, सब पर गोलियां नहीं चलाई थीं? कितने जजों ने इन विशेषणों से उसे विभूषित किया? फिर क्या यह उपहास हमारे साथ ही करना है?

हालांकि सरकार ने उन्हें सरकारी गवाह बनने के लिए बहुत से लालच दिए मगर वे टस से मस नहीं हुए। अन्ततः उन्हें समझाने के लिए उनकी मां मज़हर उलनिसां बेगम को भेजा गया। मां ने भरी हुई आंखों से कहा कि यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा तो मैं तुझे अपना दूध नहीं बख़शूंगी। अशफ़ाक ने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा—'अम्मी यदि आप नहीं बख़शेंगी तो आपकी मर्ज़ी मगर मादरे वतन, भारत माता अपना दूध ज़रूर बख्श देगी।' अपनी दीदी को इन्होंने लिखा दीदी मैं मरने जा रहा हूं। वस्तुतः अमरत्व प्राप्त करने जा रहा हूं। आप मुझे भूलेंगी नहीं, विदा दीजिए और याद रखिए कि मैं वीर-गति प्राप्त कर रहा हूं। अन्ततः 19 दिसम्बर, सन् 1927 का दिन आया जिस दिन भारत मां के इस रणबांकुरे को आज़ादी की दुल्हन को ब्याहने के लिए फांसी की घोड़ी पर सवार होना था। उस दिन इन्होंने उजले वस्त्र और सुन्दर जूते पहने, बढ़ाए हुए बाल बनवाए, उबटन लगाकर स्नान किया और सज धज कर अपने मित्रों से मिलने आए। इनके मित्रों ने इस सज धज का कारण पूछा तो इन्होंने कहा —'आज मेरा विवाह है? उजले वस्त्रों पर इत्र छिड़क कर तथा कुरानशरीफ़ का बस्ता अपने कन्धे पर टांगकर कलमा पढ़ते हुए प्रसन्नता के साथ फांसी के तख्ते की ओर चल पड़े। फांसी की रस्सी को सम्बोधित करते हुए इन्होंने कहा—'मेरी महबूबा मुझे मालूम था कि निकाह के लिए तू मेरा इंतज़ार कर रही है। लो मैं आ गया और हम दोनों अब इस तरह मिलेंगे कि कोई हमें जुदा नहीं कर सकेगा।'

13. मदन लाल ढींगरा

क्रांतिवीर मदनलाल ढींगरा का जन्म पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में हुआ था। दमन लाल ढींगरा के पिता सम्पन्न तथा अमृतसर के प्रमुख चिकित्सकों में से एक थे। उनकी ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विशेष अनुरक्ति थी यहां तक कि जितनी आस्था उन्हें परमात्मा पर थी उतनी ही ब्रिटिश साम्राज्य पर भी। मदन लाल जी का भाई भी अपने पिता के समान अंग्रेज़ राज्य का ही भक्त था। मदन लाल बचपन से ही मेधावी वृत्ति का था। खेल कूद में वह जितना पारंगत था उतना ही पढ़ाई में भी था। उसकी प्रारंभिक पढ़ाई अमृतसर और लाहौर में हुई। अपने प्रारंभिक काल से ही उसने लन्दन जाकर अभियन्ता बनने का सपना संजोया हुआ था। वह बचपन से ही स्वाभिमानी भी था। क्योंकि इस सपने को वह अपने पिता के धन से नहीं बल्कि अपने परिश्रम से कमाए धन से साकारता देना चाहता था। हालांकि उसके पिता बहुत सम्पन्न थे तथा मदन लाल का एक भाई पहले ही लन्दन में चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन करने गया था और वहीं का निवासी हो गया था। मदन लाल धन कमाने के लिए कश्मीर चला गया और फिर वहां से शिमला तथा कोलकाटांगा में जाकर काम किया। अन्ततः अपने सपने को साकारता देने के लिए मदन लाल ने जुलाई, 1906 को एक जलयान द्वारा लन्दन के लिए प्रस्थान किया। इंग्लैंड पहुंचने पर उसने अक्टूबर महीने में विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया तथा अपने सपने को साकारता देने की दिशा में वह बहुत आशावान था। वहां जाकर उसने विशेष प्रसन्नता का अनुभव किया था। खूब ठाट-बाट से अपना जीवन यापन करने लगा। अन्य अनेक युवकों के समान वह भी वहां की चकाचौंध में लगभग खो सा गया मगर जो व्यक्ति संसार में कुछ महान काम करने के लिए आया होता है उसे उस महानता

के शिखर को छूने के लिए अवसर व परिस्थितियां मिल ही जाया करती हैं। महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा जी ने इंग्लैंड में इण्डिया हाऊस की स्थापना की जहां वीर सावरकर जैसे अनेक क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियां चलाईं। सावरकर पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा प्रदत्त शिवाजी छात्रवृत्ति पर लन्दन में अध्ययन करने गए थे। मगर वहां उनके मन में ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध संघर्ष करने की कामना और अधिक प्रबल हो गई।

एक दिन मदन लाल को इण्डिया हाऊस के सम्बन्ध में जानकारी मिली और वहां के सक्रिय क्रांतिकारियों के साहस पूर्ण कार्यों की चर्चा भी सुनी। वह भी इण्डिया हाऊस पहुंच गया। जिस समय वह इण्डिया हाऊस पहुंचा उस समय वीर विनायक दामोदर सावरकर अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा मातृभूमि की दासता और उसे मुक्त कराने के बारे में बोल रहे थे। मदन लाल पर उनकी उस ओजस्वी वाणी का जादू का सा प्रभाव हुआ और उसके हृदय में देश प्रेम तथा भारत मां को स्वतंत्र कराने के विचार हिलोरें लेने लगे। बस उसी दिन से वीर सावरकर जी उसके प्रेरणा स्रोत बन गए और उसने उन्हें अपने हृदय में सर्वोच्च स्थान दे दिया। उनकी वाणी को सुनने के लिए वह हमेशा लालायित रहने लगा। वीर सावरकर की प्रेरणामयी बातों को सुनकर उसके हृदय में क्रांति के बीज दृढ़ से दृढ़तर होते चले गए। सन् 1908 में सावरकर जी ने लन्दन में अभिनव समारोह का आयोजन किया। यह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की 50वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में मनाया गया था। छात्रों ने इस समारोह को सफल बनाने के लिए बहुत परिश्रम किया। उन्होंने 1857 की पवित्र स्मृति के सूचक बिल्ले धारण किए। इन बिल्लों को देखकर ब्रिटिशों को बहुत क्रोध आया मगर छात्रों का जोश तो देखते ही बनता था जहां एक ओर यह जोश स्वतंत्रता के प्रथम संग्राम के रणबांकुरों को स्मरण

कराता था वहीं दूसरी ओर भावी स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रति भी आशावान बनाता था। अंग्रेज़ों का इससे बौखला जाना स्वाभाविक ही था। उनके घर में बैठकर ही उन्हें चुनौती दी जा रही थी। ढींगरा ने भी उस दिन अपना चमचमाता सूट पहना हुआ था तथा कोट पर वही चमचमाता बिल्ला शोभायमान था। मदनलाल के इस नए परिधान से सहसा उसका एक अंग्रेज़ मित्र क्रोधित हो उठा। उसने आव देखा न ताव एकदम मदल लाल के इस बिल्ले को उतारने के लिए झपट पड़ा। इससे पूर्व कि वह अंग्रेज़ युवक यह कुकृत्य करता ढींगरा ने उसके मुंह पर एक ज़ोरदार तमाज़ा दे मारा। फिर उसे नीचे गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा और बोला, 'क्या तुम मेरे देश के सम्मान के प्रतीक को छूने का दुस्साहस करोगे?' अंग्रेज़ युवक गिड़गिड़ाया, परमात्मा के लिए मुझे क्षमा कर दो मदन मैं अब कभी तुम्हें नहीं छेड़ूंगा। मदन लाल ने यह कहते हुए उसे क्षमा कर दिया, 'ख़बरदार! भविष्य में कभी भी किसी भारतीय को अपमानित न करना।

अभिनव समारोह ने मदनलाल के हृदय में और भी अधिक ओजस्विता प्रवाहित कर दी और वह पूरी तरह से भारत की स्वतंत्रता के लिए चिन्तन करने लगा। एक दिन मित्र मण्डली में जापानियों की देशभक्ति की चर्चा हो रही थी तो मदन लाल ने तुरन्त कहा, 'क्या तुम समझते हो कि हम हिन्दू किसी भी तरह उनसे कम हैं? समय तो आने दो, हिन्दू समस्त संसार को अपनी अजेय शक्ति का परिचय प्रदान करेगा। ढींगरा की इस बात पर मित्रमण्डली ने उपहास में उड़ाते हुए कहा, 'अरे हां हां तुम्हें हम जानते हैं। तुम भाग निकलने में बड़े ही सिद्धहस्त हो।' मित्रमण्डली ने उसके साहस और शौर्य की परीक्षा लेनी चाही। उसमें से एक ने मोटी और तीखी कील मदन की ओर बढ़ाई तो मदन ने तुरन्त अपना हाथ आगे कर दिया। उस व्यक्ति ने कील मदन की हथेली पर रखी और धीरे-धीरे अपने

दबाव को बढ़ाने लगा। अरे, धीरे धीरे कील मदन लाल की हथेली को पार कर गई मगर इस बहादुर के चेहरे पर ज़रा सा भी दर्द का आभास या किसी प्रकार की शिकन नहीं थी। मित्र ने झटके के साथ कील निकाल दी। खून की धारा बह निकली मगर मदन तो ऐसे निर्द्वन्द्व और शान्त खड़ा था मानो कुछ हुआ ही न हो। बल्कि यह देखकर तो मित्र मण्डली स्तभित रह गई कि मदन मुस्करा रहा है। मदन लाल का व्यक्तित्व जहां एक ओर साहस और ओज से परिपूर्ण था वहीं दूसरी ओर वह हमेशा मस्ती में रहता था। उसे सावरकर के अतिरिक्त किसी और का भाषण इतना अधिक प्रेरणाप्रद नहीं लगता था। यही कारण था कि वह निरन्तर इण्डिया हाऊस जाता तो था मगर सावरकर के अतिरिक्त वह किसी और में इतनी रूचि नहीं लेता था। एक दिन उसे क्या सूझी कि कहीं से ग्रामोफ़ोन ले आया और उसे सड़क की ओर खुलने वाली खिड़की पर रखकर रिकार्ड चालू कर दिया। संगीत सुनकर कुछ युवक और युवतियां वहां एकत्रित होकर नाचने और गाने लगे। स्व्यं मदन लाल भी सीटियां बजा बजाकर उसमें उन युवकों और युवतियों का सहयोग देने लगा। इस संगीत से भीतर चल रही बैठक में व्यवधान पैदा हो रहा था। सावरकर ने आकर मदन लाल को इस कृत्य पर खूब झाड़ पिलाई तो ढींगरा पानी पानी हो गया। इस घटना से उसे बहुत सन्ताप और पछतावा भी हुआ। शर्म के कारण उसका दो मास तक इण्डिया हाऊस जाने का साहस तक नहीं हुआ। व्यक्ति के महान बनने में हर अच्छी बुरी घटना अपनी भूमिका निभाती है। इन दो महीनों ने मानों मदन लाल को आत्मचिन्तन का अवसर प्रदान किया और जब वह दो मास के बाद इण्डिया हाऊस आया तो अपने प्रेरणादायक सावरकर जी से गंभीर होकर पूछा, **'सावरकर जी अब मुझे बताइए कि क्या मेरे बलिदान देने की घड़ी आ गई है?'** सावरकर ने भी उसी गंभीरता से उत्तर दिया, **मदन! यदि बलिदान के**

लिए सन्नध व्यक्ति स्वतः यह अनुभव करे कि अवसर आ गया है तो उसका तात्पर्य है कि अवसर उपस्थित है।' मदन ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'तो फिर मैं तैयार हूं।' अब मदन लाल को हर क्रांतिकारी घटना बुरी तरह से उद्वेलित करने लगी। भारत में सक्रिय क्रांतिकारियों के साहसपूर्ण कार्यों के समाचार से उसे अजीब प्रकार की अन्तःप्रेरणा प्राप्त होने लगी। धीरे धीरे सुलगने वाली इस आग को सहसा प्रचण्ड रूप धारण कराने का काम किया अंग्रेज़ों द्वारा सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर के साथ किए गए अन्याय ने। गणेश सावरकर को 'लघु अभिनव भारत मेला' नामक देशभक्ति पूर्ण कविताएं लिखने के अभियोग में बन्दी बनाकर आजीवन कालापानी की सज़ा दे दी। अंग्रेज़ जज का कथन था कि इन कविताओं में शिवाजी आदि अन्य वीरों का नाम लेकर अंग्रेज़ सरकार के विरूद्ध युद्ध घोषणा की गई है। गणेश सावरकर को अंडमान रूपी नरक में भेजे जाने के समाचार ने मदन के हृदय में जल रही प्रतिशोध की अग्नि को और भी अधिक प्रचण्ड कर दिया।

लन्दन में *'नेशनल इण्डियन एसोसिएशन'* नाम की एक संस्था थी। इस संस्था का काम था भारतीय युवकों के मन में विलासिता भरकर उन्हें देशप्रेम से विमुख करना। कुमारी एम्मा जोसफ़िन वेक नाम की एक सुन्दरी इस संगठन की सचिव थी। वह नागिन अपने रूप सौन्दर्य में फंसाकर भारतीय युवकों को पथ भ्रष्ट करती थी। सन् 1909 में मदन लाल ढींगरा इस संस्था में गए और वेक से मिलकर उससे मित्रता स्थापित कर ली। एक महीने बाद ही मदन लाल ने इस संस्था की सदस्यता भी ग्रहण कर ली। चालाक अंग्रेज़ों ने भारतीय युवकों को स्वधर्म और स्वदेश प्रेम से विमुख करने के लिए एक तीन सदस्यीय समिति का गठन भी किया था जिसके प्रमुख सदस्य थे सर विलियम कर्ज़न वाइली। वाईली महाधूर्त और कमीना व्यक्ति था। भारतीय युवकों को पथ भ्रष्ट करने में क्योंकि इसी की

भूमिका प्रमुख थी इसलिए देशभक्त युवकों का इसके प्रति बहुत अधिक रोष था। मदन लाल ने इससे भी बाहरी मन से मित्रता साध ली। वह मदन से इण्डिया हाऊस की गतिविधियों के बारे में जानना चाहता था तथा सावरकर की अनुमति से ही मदन लाल ने कुछ बातें वाईली को बताई भी थीं ताकि वह पूरी तरह उसका विश्वास पात्र बन सके। यह वाईली मदन लाल के अंग्रेज़प्रस्त पिता और भाई का मित्र था। बाबाराव सावरकर को 8 जुलाई को कालेपानी की सज़ा सुनाई गई थी तो मदन लाल ने वाईली को समाप्त करने का प्रयास किया था मगर वह बाल बाल बच गया था। अब मदन लाल निरन्तर इस ताक में था कि इस दुष्ट को उसकी दुष्टता का मज़ा चखाया जा सके।

1 जुलाई, 1909 को 'नेशनल इण्डियन एसोसिएशन' की वर्ष गांठ का लन्दन के जहांगीरहाल में आयोजन किया गया। इस समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में वाईली ही आने वाला था। मदन लाल आज पूरी तरह से तैयार था। उसने अपना रिवाल्वर भर कर अपने कोट में रखा हुआ था। साथ ही सावरकर द्वारा तैयार किया गया एक वक्तव्य भी सावधानी के साथ संभालकर अपनी जेब में रख लिया था। ताकि वह वक्तव्य उसके बंदी बना लेने के बाद जन साधारण तक पहुंच सके। मदन ने समारोह में अपना स्थान ग्रहण कर लिया और वाईली के आने की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय कर्ज़न वाईली भी वहां आ गया। सभा की समाप्ति तक मदन लाल चुपचाप बैठे रहे मगर ज्यों ही सभा का समापन हुआ मदन ने रिवालवर से एक के बाद एक लगातार 6 गोलियां वाईली के ऊपर दाग़ दीं। वाईली घटना स्थल पर ही ढेर हो गया। सभा में भगदड़ मच गई। अंग्रेज़ों का वफ़ादार कावसलाल काका मदन की ओर बढ़ा तो उसे भी ढींगरा की गोली का शिकार होना पड़ा। पकड़ो, पकड़ो जाने न दो की आवाज़ें आने लगीं और भीड़ में से एक

व्यक्ति मदन को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा मगर मदन के उलटे हाथ के एक भरपूर थप्पड़ ने उसे ज़मीन पर धराशाई होने को मजबूर किया। मदन लाल ने कहा, 'बस एक क्षण और मैं तनिक अपना चश्मा लगा लूं' कहकर उसने इतमिनान से अपना चश्मा लगाया और फिर वहां खड़ी पुलिस से बोला, 'आओ अब तुम अपना काम करो।' ढींगरा को गिरफ़्तार कर लिया गया।

मदन लाल ढींगरा को अपने साहसिक कार्य पर गर्व था। बन्दीगृह में भी वे अपने साहस और शौर्य का परिचय दे रहे थे। सावरकर जेल में उससे मिलने गए, और पूछा कि उसे किसी वस्तु की ज़रूरत तो नहीं है। मदन ने उत्तर दिया, 'भाई जी भला मुझे क्या चाहिए कुछ भी नहीं।' मगर फिर कुछ देर सोचने के बाद बोला, 'अच्छा हो सके तो मेरे लिए दर्पण भिजवा दें।' इस पर सावरकर ने कहा, 'मदन तुम यहां दर्पण का क्या करोगे?' मदन लाल ने उत्तर दिया, 'भाई जी वास्तव में बात यह है कि मैं फांसी लगने के समय भी अंग्रेज़ों को यह दिखाना चाहूंगा कि उस समय भी मैं उतना ही प्रसन्न रहा जितना कि कक्षा में पढ़ते समय या लन्दन में घूमते समय रहता था। मैं दिखा दूंगा कि मृत्यु का आलिंगन करते समय भी मदन लाल उतने ही ढंग से वस्त्र पहने खड़ा है जैसे कि वह नित्यप्रति जेल के बाहर पहना करता था।' सावरकर जी उसकी बात सुनकर आवाक से ही रह गए। धन्य है ऐसा मां का लाल। मगर जहां वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, सावरकर, श्याम जी कृष्ण वर्मा तथा अन्य अनेक देशप्रेमियों द्वारा ढींगरा की बहादुरी के चर्चे हो रहे थे, वहीं दूसरी ओर पिता साहिब दत्ता ने कहा, 'मुझे शर्म आती है कि ऐसे पुत्र ने मेरे यहां जन्म पाया। मैं समझता हूं कि वह मेरा पुत्र ही नहीं है। और उसके भाई ने भी घोषित किया था कि मेरा मदन लाल से अब कोई सरोकार

नहीं है क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह एक गंभीर अपराध है।'

मदन लाल ढींगरा का वक्तव्य जो बाद में सार्वजनिक हुआ ब्रिटिश साम्राज्य के लिए न केवल एक चुनौती था बल्कि भारतीय देशभक्तों के लिए एक प्रेरक दस्तावेज़ भी था। उस वक्तव्य के कुछ अंश इस प्रकार थे—'मैं मानता हूं कि मैंने एक अंग्रेज़ का रक्त बहाने का प्रयास किया किन्तु उसका उद्देश्य यही था कि अंग्रेज़ों ने जिस प्रकार भारतवर्ष के देश भक्त युवकों को फांसी, कालापानी तथा लम्बी सज़ाएं देने का कार्यक्रम जारी कर रखा है उसके प्रति मैं प्रतिकारात्मक विरोध प्रकट करूं, ऐसा करते समय मैंने अपनी आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति से नहीं पूछा न उसकी राय ली। मैंने जो कुछ किया कर्तव्य के नाते ही किया।' 'एक हिन्दू के नाते मैं विश्वास करता हूं कि मेरे देश का जो अनादर अपमान अंग्रेज़ कर रहे हैं वह प्रत्यक्ष परमात्मा का ही अपमान है। मेरी मान्यता है कि देश का कार्य प्रभु राम और कृष्ण का ही कार्य है... ..मेरे पास न धन है न कोई योग्यता ही है, अतः सिवाय अपने रक्त के यह अयोग्य पुत्र माता के पावन चरणों में और क्या अर्पित कर सकता है। उसी भावना से मैं सहर्ष बलिदान हो रहा हूं....आज के समय में अपने प्रिय देश के लोग किस तरह स्वतंत्रता अर्जित करने के लिए बलिदान दें तथा अपने जीवन का उत्सर्ग करें यह जान लेना प्रत्येक के लिए ज़रूरी है। अन्य देश बन्धुओं को यदि ये संस्कार देने हों तो आत्मोत्सर्ग के द्वारा ही वे संभव हो सकते हैं और यह संघर्ष भारत तथा इंग्लैंड के मध्य तब तक जारी रहेगा जब तक इंग्लैंड हमारे देश को अपने अधीन बनाए रखेगा। हिन्दू होने के नाते मेरा विश्वास है कि आत्मा कभी मरती नहीं अतः शरीर गिरने के पूर्व प्रत्येक भारतीय यदि दो अंग्रेज़ों को समाप्त करता चले तो देश की

स्वतंत्रता एक दिन में प्राप्त की जा सकती है।

मेरी अन्तिम कामना है कि फिर से मैं भारत की गोद में शीघ्र ही जन्म लूं तथा पुनः देश को स्वतंत्र कराने के कार्य में संलग्न हो जाऊं मैं चाहूंगा कि मेरी पुनः मृत्यु होने तक मेरा प्रिय देश स्वतंत्र हो जाए। भारत के स्वतंत्र होने तक मैं उसी ध्येय के लिए बार बार जन्म लूं और मृत्यु का वरण करूं। प्रभु मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें मेरी यही कामना है। वन्दे मातरम्।'

मदन लाल पर अभियोग चला और न्यायालय की कार्यवाई चली, जिसके बारे में मदन ने कहा था, 'आप जो भी धींगामुस्ती करना चाहते हैं, कीजिए। मुझे अदालत की कार्रवाई में कोई रूचि नहीं, आपके कानूनों पर ज़रा भी विश्वास नहीं। याद रखो वह समय ज़रूर आएगा जब हमारे देश में हमारा अपना राज्य होगा। आप लोगों को कान से पकड़ कर देश से बाहर निकाल दिया जाएगा।' अभियोग की सुनवाई की यह प्रक्रिया 25 जुलाई तक चली और न्यायालय ने अपना फैसला सुना दिया— मृत्यु दण्ड। जिसके लिए 17 अगस्त, 1909 की तिथि भी नियत कर दी गई। सज़ा सुनने के बाद भी मदन लाल की दिनचर्या या उसके स्वभाव में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। उसके जल पान और भोजन आदि के परिमाण में कोई कमी नहीं आई और न ही उसके मस्तमौले पन में कोई कमी आई। अन्ततः 17 अगस्त का दिन भी आ गया। उस दिन भी इस क्रांतिवीर ने प्रसन्नता के साथ प्रातराश किया। प्रातः नौ बजे एक पादरी ने अन्तिम प्रार्थना कराने के आशय से उसकी कोठरी में प्रवेश किया तो ढींगरा ने कहा, 'महोदय आप तशरीफ़ ले जाइए। मुझे आपकी ज़रूरत नहीं। मैं हिन्दू ही जन्मा था और हिन्दू ही के रूप में मरूंगा। तुम मेरी चिन्ता से मुक्त रहो।' फांसी का तख्ता चूमने से पूर्व ढींगरा ने अपनी

कामना इस प्रकार प्रकट की थी—'मैं उनसे कभी नहीं मिलूंगा जो इस शासन के पिटठू और समर्थक हैं। हिन्दू द्वारा ही मेरी लाश का दाह कर्म सम्पन्न हो, कोई अंग्रेज़ उसे न छूए। उस समय वैदिक मंत्रों का उच्चारण ज़रूर किया जाए। मेरे अपने सहोदर जो अंग्रेज़ परस्त हैं मेरी मिट्टी न छू पाएं। मेरी अस्थियां भी उन्हें न दी जाएं। मेरे कमरे में जो भी पुस्तकें, कपड़े और सामान आदि है उन्हें बेचकर राशि राष्ट्रीय कोष में जमा करा दें ताकि वह क्रांति कार्यों में लग सके।

धन्य है वह वीर और धन्य है यह भारतभूमि जिस पर ऐसे वीरपुंगव पैदा हुए हैं जिन्हें अन्तिम क्षणों में भी अपने देश और संस्कृति का इतना अधिक ध्यान है। अंग्रेज़ दरिन्दों ने उस क्रांतिवीर की अन्तिम इच्छा भी पूरी नहीं की। उनका शव भी दाह संस्कार के लिए नहीं दिया गया बल्कि उसे जेल के ही श्मशान में गाड़ने को कहा।

पं. श्याम जी कृष्ण वर्मा ने इस वीर की स्मृति में एक छात्रवृत्ति जारी की तथा महान देशभक्त लाला हरदयाल ने अगले मास 'वन्देमातरम्' में अपनी श्रद्धाजंलि देते हुए लिखा—'....अंग्रेज़ समझते हैं कि उन्होंने मदनलाल को समाप्त कर दिया परन्तु वास्तव में वह तो अमर हो गया है। भविष्य में जब भारत ब्रिटिश दास्तां की राख भी नहीं मिलेगी उस दिन भारत के सभी नगरों के चौराहों पर मदन लाल के महान स्मारक खड़े होंगे। उस महान सन्तान का बलिदान भावी पीढ़ियों को सदैव यह स्मरण दिलाता रहेगा कि सात-सात समुद्र लांघ करके भी उसने अपना जीवन सर्वस्व देश के लिए न्यौछावर करने में आगा-पीछा नहीं देखा।

14. दुर्गा भाभी

वीरांगना दुर्गा भाभी जी ने अपने साहसी और समर्पित जीवन को सार्थकता प्रदान करते हुए अपना नाम इतिहास में सदा-सदा के लिए अमर कर दिया है। अपने क्रांतिकारी सहयोगियों की प्यारी भाभी ने उनका कदम-कदम पर साथ दिया और इस प्रकार वे क्रांतिकारियों में अत्यधिक लोकप्रिय हुई। दुर्गा भाभी जी के वंशज कौशाम्बी जनपद में रहते थे तथा यहीं पर श्री बांके बिहारी भट्ट जी की पहली पत्नी को इस वीरांगना की मां बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनका जन्म 7 अक्टूबर, 1907 को प्रातःकाल हुआ। क्योंकि वह दुर्गा पूजा का समय था इसलिए पुत्री का नाम दुर्गा ही रखा गया। पिता की दूसरी पत्नी का व्यवहार इनके साथ ठीक नहीं था और इसी कारण संभवतः बचपन में ही ये विद्रोही स्वभाव की बन गई। उनका पालन-पोषण उनकी बुआ कृष्णा ने किया। बचपन से पहले शहज़ादपुर और फिर कुटी करेहटी में बीता मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में इनका विवाह भगवती चरण बोहरा जी के साथ हो गया। शादी के बाद दुर्गा भाभी के पिता जी ने इलाहाबाद स्थित कटरा का मकान दुर्गा को कन्यादान में दे दिया था। उन्होंने स्वंय संन्यास लेकर अपना जीवन कुटी करेहटी में व्यतीत किया। यहां वे आत्मानन्द परमहंस के रूप में प्रसिद्ध हुए। 27 जुलाई, 1920 में जब बोहरा जी के पिता का देहान्त हो गया तो वे खुलकर भारत को स्वतंत्र कराने के अभियान में क्रांतिकारियों के साथ हो लिए। अंग्रेज़ों से परेशान होकर दुर्गा भाभी अपने पति के साथ छुपकर जन्मस्थली कौशाम्बी जनपद में शहज़ादपुर अपने मायके कृष्णा बुआ के पास आ गई। दो महीने ससुराल में रहकर भगवतीचरण वहीं से क्रांतिकारियों का उत्साह वर्धन

करते रहे मगर 26 सितम्बर, 1920 को वे पत्नी सहित लाहौर चले आए। यहां पर दुर्गा जी दसवीं की परीक्षा पास करके एक निजी विद्यालय में शिक्षिका बन गई। साथ ही संस्कृत सीखने के लिए ट्यूशन भी रखी तथा क्रांतिकारी गतिविधियों में भी भाग लेती रही। लाहौर उन दिनों क्रांतिकारियों का गढ़ माना जाता था। यहां पर उन लोगों का सम्पर्क भाई परमानन्द तथा लाला लाजपत राय एवं उनके नेशनल कॉलेज में अध्ययनरत भगतसिंह, सुखदेव व यशपाल आदि क्रांतिकारियों से घनिष्ठता के साथ हुआ। लाहौर में 'नौजवान भारत सभा' का गठन किया गया। यह मुख्य रूप से छात्र युवकों का संगठन था तथा इसकी स्थापना इनके पति भवगतीचरण बोहरा तथा भगतसिंह ने की थी। दुर्गा भाभी सभा का काम करने के लिए स्वेच्छा से समर्पित हो गई। जब लाहौर में क्रांतिकारियों के गुप्त अड्डों पर क्रांतिकारियों की अंग्रेज़ों के विरूद्ध योजनायें बनतीं तो दुर्गा भाभी क्रांतिकारियों के संकेत पर गुप्त रूप से सन्देश व शस्त्र इधर से उधर पहुंचाने का काम करती थीं। भगवतीचरण बोहरा क्रांतिकारियों में सबसे बड़े थे। इसलिए सभी दुर्गा जी को भाभी कहकर पुकारते थे। इस प्रकार वे क्रांतिकारियों की प्रिय भाभी बन गईं। हालांकि इनके पेट में जब शचीन्द्र पल रहा था तो एक बार ये पुनः शहज़ादपुर आ गईं मगर अंग्रेज़ पुलिस ने यहां भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। अन्ततः दुर्गा जी को पड़ोस के कन्हैयालाल अग्रवाल के घर छिपाया गया जहां उन्होंने बच्चे को जन्म दिया। सरकार ने इनका पीछा नहीं छोड़ा तो ये पुनः लाहौर आ गई तथा क्रांतिकारियों की सहायता के लिए समर्पित हो गई। अपने नन्हें से शिशु को गोद में लिए पुलिस से छुपते-छुपाते पूरी तरह क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहीं।

18 दिसम्बर, 1828 को लाला लाजपतराय की शहादत

का बदला लेने के लिए निमित चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह तथा राजगुरू ने लाहौर के बाज़ार में सांडर्स को गोलियों से भून दिया। दुर्गा भाभी ने एक बार स्वयं बताया था कि जब सांडर्स को गोलियां मारी गई थीं तो वे अपने कमरे में संस्कृत का अध्ययन कर रही थी। अंग्रेज़ी सिपाहियों से क्रांतिकारियों को लाहौर से सुरक्षित निकाल कर ले जाना उस समय एक टेढ़ी खीर थी। रात के ग्यारह बजे अचानक सुखदेव ने दरवाज़ा खटखटाया और जब पूरी बात भाभी जी को बताई तो वे ज़रा सी भी नहीं घबराई बल्कि तुरन्त सुखदेव को पांच सौ रूपए दिए और यही नहीं एक योजना के तहत उस रूढ़िग्रस्त युग में भी भगतसिंह की पत्नी बनकर तथा अढ़ाई वर्ष के अपने बेटे शचीन्द्र को साथ लेकर अगले दिन की प्रातःकाल की रेल से कलकता के लिए रवाना हो गई। उस समय इस विरांगना की आयु मात्र बाईस वर्ष की थी। भगतसिंह अंग्रेज़ी पोशाक में हैट लगाए हुए थे तथा सुखदेव इस तथाकथित दम्पति के नौकर के रूप में चल रहे थे। रेल के उसी डिब्बे में रामनामी चादर ओढ़े हुए चन्द्रशेखर आज़ाद भी पहले से ही मौजूद थे। चन्द्रशेखर आज़ाद तो पूर्व योजना के अनुसार बड़ी चतुराई से मथुरा में उतर गए मगर दुर्गा भाभी ने समूचे अंग्रेज़ी प्रशासन की आंखों में धूल झोंक कर क्रांतिकारियों को कलकत्ता में सुरक्षित पहुंचा दिया। इस साहसिक कार्य से भाभी जी का आत्मविश्वास बहुत अधिक बढ़ गया तथा वे क्रांतिकारियों के हृदय में बस गईं। कलकता स्टेशन पर उनके पति बोहरा इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पत्नी की पीठ ठोंकते हुए कहा कि आज हमारी असली शादी हुई है।

8 अप्रैल 1927 को दिल्ली असेम्बली में दमनकारी 'पब्लिक सेफ़टी बिल' प्रस्तुत करते समय भगतसिंह तथा बटुकेश्वर दत्त ने 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' व 'साम्राज्यवाद का नाश हो' के नारे

लगाकर वहीं पर बम फेंके तथा ये दोनों जानबूझकर वहीं पर गिरफ़्तार भी हो गए। इन्हें जेल जाते समय पुलिस से छुड़ाने के लिए चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतवी चरण वोहरा, यशपाल, धन्वन्तरी, वैशम्पायन ने बम फोड़ कर आतकिंत करने की योजना बनाई। इधर दुर्गा भाभी लाहौर में ही रहकर क्रांतिकारियों से मिलती रहीं और सक्रियता के साथ क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़ गई थीं। दुर्भाग्यवश 28 मई, 1930 को उनके पति भगवती चरण बोहरा जी रावि तट पर एक बम का परीक्षण करते हुए अचानक शहीद हो गए। अपने इस क्रांतिकारी साथी की मृत्यु पर कहते हैं कि चन्द्रशेखर आज़ाद तथा अन्य समस्त बन्धु फफक-फफक कर रो पड़े परन्तु दुर्गा भाभी ने साहस और संयम से काम लिया। क्योंकि वह समय और भी अधिक खतरे से भरा हुआ था। ज़रा सी भूल से सभी क्रांतिकारी पकड़े जा सकते थे। पति की लाश सामने पड़ी थी और यह वीरांगना सबके सामने सुहागन का वेश बनाए खड़ी हुई थी। अन्ततः भाभी जी ने अपने पति की शहीदी पर यह कठोर व्रत लिया कि वे आजीवन क्रांतिकारियों के कंधे से कंधा मिलाकर काम करेगी और जीवन पर्यन्त स्वतंत्रता संग्राम में अपने जीवन की आहुति देती रहेगी। उन्होंने अपने इस व्रत को आजीवन निभाया भी। 23 मार्च, 1931 को भगतसिंह, राजगुरू और सुखदेव को फांसी देने की तिथि तय हुई तो दुर्गा भाभी तड़प उठी। वे किसी भी प्रकार इन्हें बचाना चाहती थी। इस कार्य के लिए वे गुप्त रूप से महात्मा गांधी के साथ जाकर मिली और उन्हें कहा कि यदि वे हस्तक्षेप करें तो इन युवकों को बचाया जा सकता है। अहिंसा के पुजारी गांधी जी ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया मगर इस से भी भाभी निराश नहीं हुई। उन्होंने इन क्रांतिकारियों की शहादत का बदला लेने के लिए पृथ्वीसिंह आज़ाद तथा वैशम्पायन के साथ मिलकर मुम्बई में

पुलिस कमिशनर हेली को मारने की योजना बनाई। वहां लैमिंगटन रोड पर रात के एक बजे क्लब के सामने कुछ गोरे लोगों को गाड़ी से उतरे हुए देखा तो दुर्गा भाभी जी ने स्वयं उस दरिन्दे का काम तमाम करने के लिए उस पर गोली चलाई मगर अफ़सोस हेली बच गया क्योंकि गोली सार्जेंट और गोरी मेम को लगी। पुलिस अब साए की तरह निरन्तर उनका पीछा करने लगी। उनकी गिरफ़्तारी का वारंट था और ऐसे में भी अपने नन्हें बच्चे की परवाह न करते हुए दुर्गा भाभी क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रही। परन्तु पुलिस की चौकन्नी नज़रों से बच पाना बहुत ही कठिन था। वे लाहौर पहुंचने पर गिरफ़्तार कर ली गई। एक साल की कठोर सज़ा मिली जो लाहौर छावनी में काटी। इसके बाद तीन वर्ष के लिए लाहौर में ही नज़र बन्द कर दी गई। सन् 1935 में उन्हें लाहौर से निष्कासित कर दिया गया तथा ये दिल्ली चली गई।

दुर्गा भाभी जी ने कुछ काल के लिए इलाहाबाद को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाया तथा चन्द्रशेखर आज़ाद ने जिन्हें वे भैया कहती थीं उनके साथ विशेष सहयोग दिया। आज़ाद दुर्गा भाभी के इकलौते बेटे शचीन्द्र को बेहद स्नेह करते थे यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि– आज़ाद जी ने अन्त समय में अल्फ़्रेड पार्क में जिस पिस्तौल से अपनी जीवन लीला समाप्त की थी वह पिस्तौल भी दुर्गाभाभी ही जयपुर से लाई थी। दुर्गाभाभी पर एक से बढ़कर एक मुसीबतें लगातार आती रहीं मगर अन्दर ही अन्दर बुरी तरह टूट जाने के बावजूद भी उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्ति के मार्ग को नहीं छोड़ा। सन् 1938 में ये कांग्रेस की सक्रिय सदस्या बनीं तथा दिल्ली प्रदेश समिति की अध्यक्षा भी चुनी गईं। मगर इनके मन में यह भावना तीव्रतर होती गई कि भावी पीढ़ी को अपनी संस्कृति तथा देशभक्ति के संस्कार देने चाहिएं। इसी भावना

को चरितार्थ करने के लिए उन्होंने 20 जुलाई, 1940 को लखनऊ में एक स्कूल की स्थापना की थी।

देश की स्वाधीनता के बाद उन्होंने अपना जीवन समाज सेवा, शिक्षा सेवा और क्रांतिकारी परिवारों के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। वे अपने जीवन के अन्तिम दिनों में देश में बढ़ रहे जातिवाद, साम्प्रदायवाद तथा भ्रष्टाचार से बहुत व्यथित थीं। एक साक्षात्कार में उन्होंने अपनी वेदना को प्रकट करते हुए कहा था कि क्रांतिकारियों ने जिस स्वतंत्र भारत की कल्पना को सामने रखकर अपने प्राण उत्सर्ग किए थे आज भी वैसा भारत नहीं बन पाया है। अपने आंसू पोंछते हुए उन्होंने आगे कहा था कि तप और त्याग का युग समाप्त हो गया है, लूट-खसोट का बोलबाला है, किस भारत और स्वराज्य की कल्पना की थी हमने और कैसा समाज आज हमारे सामने है..... क्रांतिकारी तो अब पक्के आम की तरह गिर रहे हैं, एक समय आएगा जब लोग उनके बलिदान को भूल जाएंगे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था 'क्रांति क्षण-भंगुर है, क्रांतिकारी समय-समय पर आवश्यकतानुसार पैदा होते हैं और अपनी आहुति देकर चले जाते हैं। क्रांति, सामाजिक हो अथवा राजनैतिक, जिस सुख और सौंदर्य को जन्म देती है उसकी प्रसव वेदना क्रांतिकारी ही सहता है। आजीवन इस वेदना को सहने वाली इस वीरांगना का 14 अक्टूबर, 1999 को रात्रि नौ बजे 92 वर्ष की आयु में ग़ाज़ियाबाद में देहान्त हो गया। वे यहां लगभग 20 वर्षों से राजनगर के सेक्टर 2 में अपने पुत्र शचीन्द्र वोहरा के यहां रह रही थीं। मृत्यु के समय उनका पुत्र, पुत्रवधु तथा एक पौत्र और दो पोतियां मौजूद थीं। दुर्गाभाभी आज भले ही हमारे बीच विद्यमान नहीं है मगर उनका बलिदान, तप और त्याग देशवासियों को सदा-सर्वदा प्रेरणा देता रहेगा.....।

15. लाला हरदयाल

लाला हरदयाल जी एक अद्‌भुत प्रतिभा के मालिक तथा आदर्श क्रांतिकारी थे। उनका जन्म दिल्ली के श्री गौरी दयाल माथुर जी के यहां 14 अक्टूबर 1884 में हुआ। उनके पिता जिला कचहरी में पेशकार थे। मूलरूप से इनका परिवार पंजाब का रहने वाला था। बचपन में ही हरदयाल जी ने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा के प्रमाण देने आरंभ कर दिए थे। दिल्ली के एक कालेज से बी.ए. करने के बाद अध्ययन के लिए ये लाहौर चले गए। लाहौर के गवर्मैंट कॉलेज में उन्होंने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय इस प्रकार दिया कि वे एक स्थान पर अपने एक सहपाठी के साथ शतरंज का खेल खेल रहे थे। उनके अन्य सहपाठी भी पास ही बैठे हुए थे। केवल पांच मिनटों में ही हरदयाल जी ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को न केवल मात ही दी बल्कि उन पांच मिनटों में उन्होंने और भी बहुत कुछ किया। जिस समय शतरंज का खेल शुरू हुआ उसी समय एक अन्य छात्र ने घण्टी स टन-टन की आवाज़ निकालना शुरू की। अरबी भाषा के एक जानकार ने उन्हीं पांच मिनटों में एक अरबी की कविता सुनाई। उसके बाद एक प्राध्याक ने लेटिन भाषा की कविता सुनाई। उन्हीं पांच मिनटों में हरदयाल को गणित का एक सवाल हल करने के लिए दिया गया। बीस वर्षीय हरदयाल जी ने अपने सहपाठी को मात देने के साथ-साथ गणित का सवाल भी हल कर दिया, उन पांच मिनटों में कितनी बार घण्टी की टन-टन हुई यह भी बता दिया तथा अरबी और लेटिन की कविताएं भी ज्यों की त्यों सुना दीं।

लाहौर कॉलेज से उन्होंने अंग्रेजी भाषा और साहित्य में एम.ए. किया मगर वहां भी दो सालों की पढ़ाई केवल

एक ही वर्ष में पूरी कर ली और वह भी 97 प्रतिशत अंक लेकर तथा यूनिवर्सिटी में प्रथम स्थान प्राप्त करके। उनकी उत्तर पुस्तिका देखकर परीक्षकों ने कहा कि–'इस विद्यार्थी को आगे पढ़ाने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है।' उनकी इस प्रतिभा के कारण ही उन्हें सरकार की ओर से छात्रवृत्ति मिली तथा उन्हें अध्ययन के लिए लन्दन भेजा गया। वहां पर उन्होंने आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी में प्रवेश लिया तथा वहां पर भी अपने प्राध्यापकों पर अपनी अद्‌भुत प्रतिभा की छाप शीघ्र ही डाल दी। महर्षि दयानन्द जी के अनन्य भक्त तथा क्रांतिकारियों के आदि गुरू श्यामजी कृष्ण वर्मा जी ने लन्दन में 'इण्डिया हाऊस' की स्थापना पहले ही कर रखी थी। यह इण्डिया हाऊस क्रांतिकारियों की शरण स्थली थी। यहां हरदयाल जी की भेंट श्यामजी कृष्ण वर्मा, भाई परमानन्द और वीर सावरकर आदि से हुई। वे निरन्तर इण्डिया हाऊस के कार्यक्रमों में भाग लेने लगे तथा उनके हृदय में धीरे-धीरे भारत की आजादी के लिए कार्य करने के भाव प्रबल से प्रबलतर होते चले गए। उन्होंने सशस्त्र क्रांति की शपथ ली और अपने आप को पूरी तरह स्वतंत्रता संग्राम में झोंकने के लिए आक्सफोर्ड जाकर छात्रवृति और छात्रत्व से त्यागपत्र दे दिया। उन्हीं दिनों उन्होंने अपनी पत्नी को भी लन्दन बुला लिया और उन्हें भी क्रांतिकारी बना दिया।

हरदयाल जी को अंग्रेज़ीयत से इतनी अधिक नफ़रत हो गई कि उन्हें विदेशी वस्त्र पहनना भी एक अपराध लगने लगा। साथियों के लाख समझाने के बावजूद भी उन्होंने उस ठण्डे प्रदेश में भी केवल कफ़नी, धोती आदि वस्त्रों का प्रयोग करना आरंभ कर दिया। स्वास्थ्य की भी परवाह न करते हुए वे केवल एक कपड़े में ही रहने लगे। उन्होंने यह भी संकल्प किया कि जो हिन्दू नहीं होगा वे उसके हाथ का पकाया

भोजन नहीं करेंगे। भले ही उनकी भावनाएं अच्छी थीं मगर इस हठधर्मी का उनके स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उन्हें ब्रांकाइटिस की बीमारी हो गई। जिसे उन्होंने प्रारंभ में छुपाए रखा मगर बाद में उन्हें दवा दारू देना ज़रूरी हो गया। कुछ स्वस्थ हो जाने पर उन्हें पैरिस में डाक्टर राणा के पास भेजा गया। राणा और उनकी जर्मन धर्मपत्नी ने उनकी अच्छी सेवा की जिससे उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ मगर तब भी वे राणा जी की धर्मपत्नी के हाथों से न तो भोजन करते थे और न ही उनसे बात करते थे। इण्डिया हाउस के अपने साथियों से परामर्श करने के बाद वे भारत में आन्दोलन को प्रभावी ढंग से स्थापित करने के लिए लाहौर लौट आए और वहां पर एक आश्रम स्थापित करके अपना कार्य सक्रियता के साथ करने आरंभ किए। लाला हनुमन्तसहाय, मास्टर अमीर चन्द, अवध बिहारी तथा भाई बाल मुकुन्द आदि क्रांतिकारी इसी आश्रम तथा लाला हरदयाल की देन हैं। युवकों में क्रांति के बीज बोने के साथ-साथ जन साधारण में स्वतंत्रता की भावना तीव्र करने के लिए उन्होंने पंजाबी नाम से एक समाचार पत्र भी निकाला जो पंजाबी तथा उर्दू दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। समाचार पत्र ने वास्तव में ही जनसाधारण को उद्वैलित किया मगर इसकी भनक अंग्रेज़ सरकार को भी लग गई और लाला जी के आस-पास गुप्तचरों का जाल बिछ गया मगर भारत मां का यह निराला लाल गुप्तचरों की आंखों में धूल झोंक कर लाहौर से निकलकर कोलम्बो पहुंच गया। वहां से इटली होते हुए वे फ्रांस पहुंच गए।

फ्रांस की राजधानी पेरिस में पुनः क्रांतिकारी मित्र एकत्रित हो गए। श्याम जी कृष्ण वर्मा, श्रीमती कामा और सावरकर उस समय पेरिस में ही थे। वहां पर श्रीमती कामा

के क्रांतिकारी समाचार पत्र 'वन्दे मातरम्' के सम्पादन का काम लला हरदयाल जी को सौंपा गया। इस पत्र के द्वारा हरदयाल जी ने अंग्रेज़ी सरकार के विरूद्ध मोर्चा खोल दिया तथा उससे सचेत होकर सरकार ने उन्हें गिरफ़्तार करने के लिए सक्रियता के साथ अभियान आरंभ कर दिया और इसके लिए फ्रांस सरकार पर दबाव डाला गया। हमारे नायक यहां भी अंग्रेज़ी सरकार के गुप्तचरों को चकमा देकर गुप्त ढंग से लन्दन, अल्जीयर्स होते हुए वैस्ट इण्डिज़ के एक द्वीप में जा पहुंचे। अपने ही कुछ साथियों को शपथ तोड़कर गवाह बन जाने तथा कुछ साथियों की गिरफ्तारी से उनकी वृत्ति में परिवर्तन आया और वे आध्यात्म एवं दर्शन की ओर इस कदर झुके कि एक तरह से अज्ञातवासी ही हो गए। किस को कुछ पता नहीं चला कि वे कहां चले गए हैं! उन्हें हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी, संस्कृत, फ्रैंच, फ़ारसी, उर्दू आदि भाषाओं का भी ज्ञान था। उन्होंने सभी भाषाओं के माध्यम से आध्यात्म का अध्ययन किया और अन्ततः उन्होंने बौद्ध धर्म की शरण में जाने का मन बना लिया मगर बाद में एक नए समन्वयात्मक धर्म की स्थापना करने का निर्णय लिया। इसी बीच भाई परमानन्द जी सरकार की नज़रों से बचने के लिए वैस्ट इण्डिज़ के इसी मार्टिनिक द्वीप में पहुंच गए तथा लाला हरदयाल जी से उनकी भेंट हुई। भाई परमानन्द जी ने पुनः उनकी क्रांतिकारी भावनाओं को उभारा। उन्होंने कहा कि भारत में पहले ही धार्मिक आचार्यों की कमी नहीं है। मगर वे भारत की स्वतंत्रता की ओर सक्रियता से प्रयास नहीं कर रहे हैं। अपने जीवन को इस प्रकार से एकाकी और निष्क्रिय बनाने से कोई सिद्धि प्राप्त नहीं होने वाली है। उन्होंने उन्हें प्रेरित किया कि वे अपने लेखन और प्रवचन आदि के द्वारा देश सेवा करें। उनकी प्रेरणा से लाला जी पुनः भारत

को स्वतंत्र कराने की दिशा में सक्रिय हो गए।

जनवरी 1911 में भाई परमानन्द तथा लाला हरदयाल अमेरिका के कैलिफ़ोर्निया राज्य में जा पहुंचे। सरदार तेजासिंह, तारकनाथ दास, बाबा सोहनसिंह भकना, पं. कांशीराम जैसे क्रांतिकारी वहां पर पहले ही मौजूद थे। अमेरिका के समस्त भारतीयों को इन क्रांतिकारियों ने संगठित करके उनमें स्वतंत्रता प्राप्ति की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया। भाई परमानन्द जी ने लाला हरदयाल जी के ओजस्वी प्रवचन सानफ्रांसिस्को में कराए। उनके भाषणों का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्हें स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी में दर्शन शास्त्र का प्राध्यापक बना दिया गया। कुछ समय के बाद क्रांतिकारियों ने 'गदर पार्टी' का गठन किया। जिसके प्रधान सोहनसिंह भकना तथा मंत्री लाला हरदयाल जी बनाए गए। इस पार्टी ने 'गदर' नाम का एक पत्र भी निकाला। इस पत्र के माध्यम से क्रांतिकारियों को अपनी विचारधारा जन साधारण तक पहुंचाने में बहुत सफलता मिली तथा उन्हें धन भी काफ़ी अधिक मिलने लगा। लाला जी ने सात भाषाओं में इस पत्र को प्रकाशित कराने की व्यवस्था की तथा उनके प्रयासों से सैनिक छावनियों तक भी गदर के क्रांतिकारी अंक पहुचांए जाने लगे। इस प्रकार के समाचार जब अंग्रेजी सरकार तक पहुंचे तो वह बुरी तरह से तिलमिला उठी तथा उसने अमेरिका पर दबाव डालकर उन्हें गिरफ़्तार करवाने का आग्रह किया। मगर अमेरिका ने इसे गंभीरता से नहीं लिया क्योंकि उसे इससे कोई लाभ होने वाला नहीं था। उस समय उनकी नीति तो सैन्य सामग्री बेचकर धन कमाने की ही थी। हां दिखावे भर के लिए लाला जी को गिरफ़्तार करने का उपक्रम किया गया मगर असल में वह उन्हें अमेरिका से सुरक्षित निकल भागने का अवसर देना ही था।

ग़दर पार्टी ने उन्हें बर्लिन पहुंचाया जहां चम्पक रमण पिल्ले, मुहम्मद बरकतुल्ला खां, डॉ. प्रभाकर, वीरेन्द्र सरकार, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन्द्रनाथ दत्त आदि क्रांतिकारी पहले से ही कार्यरत थे। लाला हरदयाल जी के पहुंचने से उनमें नया जोश पैदा हो गया। उस समय प्रथम विश्वयुद्ध के बादल छाने लगे थे। उन्हीं दिनों भारत में राजा महेन्द्र प्रताप बर्लिन पहुंचे और उन्होंने वहां 'आज़ाद हिन्द सरकार' बना ली। लाला हरदयाल जी इंग्लैंड के शत्रु जर्मन से हाथ मिलाकर कुछ ठोस उपलब्धि प्राप्त करना चाहते थे। उन्हीं के प्रयासों से वार्सा में जर्मनों द्वारा सन्धि वार्ता के लिए तैयार किए गए प्रारूप में 'भारत की स्वतंत्रता' की शर्त भी जोड़ी गई थी। जब क्रांतिकारियों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए भारत में एक साथ क्रांति की योजना बनाई तो अमेरिका और कनाडा से 'गदर पार्टी' के लोग भी बड़ी संख्या में भारत पहुंचने लगे। जर्मनी से लाला हरदयाल जी ने हथियारों से भरे कई जहाज़ तथा बहुत सा धन भेजा। भारत में रासबिहारी बोस तथा शचीन्द्र नाथ सान्याल इन हथियारों की प्रतीक्षा कर रहे थे मगर दुर्भाग्य से सभी जहाज़ या तो पकड़ लिए गए या डूबो दिए गए। उधर क्रांतिकारी दल में एक भेदिए के घुस जाने से पूरे देश में एक साथ होने वाले विस्फोट का भी भेद खुल गया और सैकड़ों क्रांतिकारी पकड़े गए। लाला हरदयला जी पुनः आध्यात्म और दर्शन की ओर मुड़ गए। वे स्वीडन में चले गए और कुछ वर्ष वहां व्यतीत करने के बाद जब ब्रिटिश सरकार ने उन पर से सभी प्रतिबन्ध हटा लिए तो 1927 में वे लन्दन चले गए। वहां उन्होंने दर्शन शास्त्र में पी.एच.डी. की। वे क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए पुनः अनुकूल वातावरण देख रहे थे तथा ज्यों ही उन्हें ऐसी अनुकूलता मिली वे अमेरिका चले गए।

लाला हरदयाल जी के हृदय में अपनी मातृभूमि के दर्शन करने की तीव्र इच्छा हुई जिसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व होम कर दिया था। इतना प्रतिभाशाली होने के बावजूद अपना सारा जीवन अभावों और कष्टों में ही बिताया। अभावों के कारण कहते हैं इस महान विद्वान एवं आदर्श क्रांतिकारी ने अपना जीवन अधिकतर उबले हुए आलू और सब्ज़ियां खाकर ही गुज़ारा। भारत माता के दर्शनों के लिए दो बाधाएं मार्ग में खड़ी थी। एक तो ब्रिटिश सरकार की अनुमति और दूसरे आर्थिक अभाव। निरन्तर प्रयास करने पर ब्रिटिश सरकार की अनुमति तो प्राप्त कर ली गई मगर आर्थिक अभाव अभी आड़े था। इस बात का पता जब भारत में भाई परमानन्द जी को लगा तो उन्होंने तुरन्त मनीआर्डर द्वारा धन भेजा। उस धन की रसीद भी भाई जी को प्राप्त हो गई मगर कहते हैं कि इधर उन्होंने उस मनीआर्डर की रसीद अपने हाथ में ली हुई थी और उधर उन्हें इस अमर और आदर्श क्रांतिकारी के देहावसान का समाचार मिला। भाग्य की इस बिडम्बना पर भाई परमानन्द जी और समस्त क्रांतिकारी स्तब्ध से रह गए। बड़ी ही रहस्यमयी परिस्थितियों में 4 मार्च, 1939 को फ़िलडेल्फ़िया (अमेरिका) में इस अमर क्रांतिकारी का देहावसान हो गया। माना जाता है कि अंग्रेज़ गुप्तचरों ने उन्हें ज़हर दे दिया था।

16. उधमसिंह

क्रांतिवीर उधमसिंह का जन्म 26 दिसम्बर, 1899 को पटियाला ज़िले के सुनाम नामक गांव में हुआ। इनके पिता का नाम चोहड़सिंह तथा माता का नाम नारायणी था। अतिसार रोग से पीड़ित होकर इनके पिता जी का देहावसान उस समय हो गया जब उधमसिंह बहुत छोटे थे। इस आपदा के बाद उधमसिंह को अपने बड़े भाई साधुसिंह के साथ अनाथाश्रम में जाना पड़ा। दोनों भाई अनाथाश्रम में पलने लगे मगर विधाता का विधान कुछ ऐसा बना कि कुछ दिनों के बाद ही इनके बड़े भाई साधुसिंह की भी अनाथाश्रम में ही मृत्यु हो गई। अनाथाश्रम में उधमसिंह बढ़ई का काम करते थे तथा साथ-साथ पढ़ाई भी करते रहते थे। कारावास के रिकार्ड से पता चलता है कि इन्होंने अच्छे अंक लेकर दसवीं की परीक्षा पास की थी। जिन लोगों ने दुनियां में कुछ विशेष काम करने होते हैं उनके लिए कुछ न कुछ संयोग बन ही जाया करते हैं। उधमसिंह के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। एक बार अनाथाश्रम से इनका एक साथी इन्हें पण्डित जयचन्द की गोष्ठी में ले गया। उधमसिंह ने उस गोष्ठी में देशभक्ति तथा क्रांतिकारियों के उत्साह की जो बातें सुनीं उनसे उनके भीतर भी एक नया जोश पैदा हो गया। उधर 13 अप्रैल, 1919 को जलियांवाला हत्याकांड हो गया। हजारों ही निःसहाय और बेकसूरों को बर्बरता के साथ मौत के घाट उतार दिया गया। इस हत्याकांड ने समूचे भारतीय जनमानस को हिलाकर रख दिया। उधमसिंह का हृदय इस दर्दनाक घटना से बहुत उद्वैलित हुआ। पैंतीस वर्षीय रत्नदेवी के विलाप ने इसमें मानों घी का काम किया। इस महिला

का पति भी इस नरसंहार का शिकार हुआ था तथा वह उसके शव को प्राप्त करना चाहती थी मगर लाशों के उस ढेर में उसे अपने पति का शव नहीं मिल पा रहा था। उधमसिंह ने नरकंकालों के उस ढेर में से रत्नदेवी के पति के शव को ढूंढ कर उसके हवाले किया। उसी समय उधमसिंह ने इस नरसंहार का बदला लेने की कसम खाई कि वह इसका प्रतिशोध लेगा.....अन्याय का प्रतिशोध.....अत्याचार का बदला। हत्यारों को बख्सुंगा नहीं.....। इस नरसंहार के बाद भी पुलिस का दमनचक्र चलता रहा। क्रांतिकारियों के ठिकानों को तलाशा जाने लगा। अनाथाश्रम में भी पुलिस पूछताछ करने के लिए आई मगर उधमसिंह ने अपनी प्रतिज्ञा को अपने मन में बसाकर बाईस अप्रैल को अमृतसर छोड़ दिया। अमृतसर से वे सीधे कश्मीर पहुंचे तथा वहां पर अपना काष्ठकला का काम आरंभ कर दिया मगर वहां पर वे अधिक दिन नहीं टिक सके क्योंकि यहां पर आजीविका की व्यवस्था करना अमृतसर से भी कठिन था।

अन्ततः अक्टूबर, 1919 में वे अपेन पैतृक गांव सुनाम आ गए। वहां से कुछ लोग मेहनत-मजदूर करने के लिए विदेश जा रहे थे अतः उधमसिंह भी उनके साथ अफ्रीका चले गए। वहां से वे अमेरिका पहुंचे। अमेरिका में उनका परिचय गदरपार्टी के सदस्यों से हुआ। इससे उनके हृदय में धधकती क्रांति की आग को कुछ और बल मिला। उन्होंने गोली चलाने का प्रशिक्षण लिया तथा अनेक विस्फोटक पदार्थों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। अमेरिका से वे 1923 में लन्दन पहुंच गए मगर कहते हैं कि भगतसिंह के बुलाने पर वे 1928 में पुनः भारत लौट आए। यहां पर अवैध

हथियारादि रखने के आरोप में उन्हें बन्दी बना दिया गया तथा लगभग चार वर्ष तक वे रावलपिण्डी और मुलतान की जेलों में बन्दी रहे। उन्हीं दिनों साईमन कमीशन का विरोध करते हुए लाला लाजपत राय जी शहीद हो गए तथा सांडर्स की हत्या करने के आरोप में भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरू को मृत्यु दण्ड सुनाया गया। उधमसिंह की भेंट पुनः भगतसिंह से नहीं हो सकी।

इधर जेल से मुक्त हो जाने पर भी पुलिस लगातार उधमसिंह का पीछा कर रही थी मगर वे भूमिगत हो गए। पुलिस ने सुनाम और अमृतसर का चप्पा-चप्पा छान मारा मगर वीर उधमसिंह पता नहीं कहां-कहां भटकते हुए अन्तः 1934 में जर्मनी पहुंच गए। क्योंकि उनका शिकार लन्दन में था इसलिए जर्मनी से वे सीधे लन्दन पहुंचे। वहां इन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित इण्डिया हाउस में अपना डेरा डाला। इण्डिया हाउस उन दिनों भी क्रांतिकारियों का बहुत बड़ा गढ़ था। वहीं क्रांतिकारियों के सान्निध्य में उधमसिंह अपना प्रतिशोध पूरा करने की निरन्तर फ़िराक में थे। आख़िर विधाता ने भारत मां के इस सपूंत को अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने का संयोग पैदा कर ही दिया। बीस वर्ष और ग्यारह महीने के बाद उधमसिंह को सहसा एक दिन यह समाचार पढ़ने को मिला कि 13 मार्च 1940 को ईस्ट इण्डिया एसोसिएशन और रायल सेण्ट्रल एशियन सोसायटी द्वारा इंग्लैंड के केक्सटन हाल में एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया है। गोष्ठी का विषय था विश्व स्थिति और अफ़ग़ानिस्तान। इस गोष्ठी में भारतवर्ष के सचिव जिटलैण्ड, पंजाब के एक भूतपूर्व गवर्नर

लुई डेन और बम्बई के भूतपूर्व गवर्नर लार्ड लिमिंगटन ने तो भाग लेना ही था मगर गोष्ठी का मुख्य वक्ता था पापी माइकेल ओडवायर। जलियांवाला बाग़ के नरसंहार के दो मुख्य दरिन्दे थे गवर्नर माइकेल ओडवायर तथा जनरल डायर। इनमें से डायर को तो स्वयं परमात्मा ने उसे उसके किए का दण्ड दे दिया था। भारत से लौटने पर वह लगातार सात वर्ष तक पक्षाघात से बीमार रहा और 23 जुलाई, 1927 को उसकी मृत्यु हो गई। माइकल ओडवायर अभी जीवित था। केक्सटन हाल में होने वाली बैठक का समाचार पढ़कर उधमसिंह के हृदय में जलती हुई प्रतिशोध की ज्वाला को पुनः हवा मिल गई। मानो उस नरपुगंव ने अपनी चिरसाध को तृप्त करने का सुअवसर प्राप्त कर लिया था।

उधमसिंह कैक्सटन हॉल में गोष्ठी आरंभ होने से पूर्व ही श्रोताओं की कतार में सबसे आगे जाकर बैठ गए थे। उनकी जेब में पहले से ही भरा हुआ पिस्तौल था। क्रम से सभी वक्ता बोल चुके तो मुख्य वक्ता के रूप में ओडायर बोलने के लिए खड़ा हुआ। अपने शिकार को सामने देखते ही उधमसिंह तुरन्त पिस्तौल हाथ में लेकर खड़े हो गए और मात्र तीन गज की दूसरी से ओडायर पर गोलियां बरसा दीं। हालांकि ओडायर मात्र दो गोलियां लगने के बाद ही ढेर हो गया था मगर वर्षों से हज़ारों भारतीयों की हत्या का प्रतिशोध लेने वाले उधमसिंह ने लगातार छः गोलियां दाग़ीं। इस गोलीकाण्ड में जिटलैंण्ड, लुई डेन और लार्ड लिमिंगटन भी घायल हुए। कैक्सटन हाल में इस अप्रत्याशित घटना से एकदम भगदड़ मच गई। अपनी-अपनी जान बचाने के लिए जिसको जिधर से भी रास्ता मिला उधर से ही भाग खड़ा

हुआ मगर गोलियां दागने वाला यह वीरपुगंव जलियांवाला बाग़ के हत्याकाण्ड का प्रतिशोध लेने के बाद एकदम गंभीर और अविचल सा खड़ा रहा। ओडायर के शव को देखकर उसने कहा, 'यह मर गया है, इसे मरना ही चाहिए था।' वह चाहते तो भाग भी सकते थे मगर अपना काम करने के बाद उन्होंने स्वेच्छा से आत्मसमर्पण कर दिया। गिरफ़्तारी के बाद अधिकारियों ने इनका नाम पूछा तो इन्होंने अपना नाम राम मुहम्मद सिंह आज़ाद बताया। यह नाम हिन्दू, मुस्लिम और सिक्खों की एकता का प्रतीक था। जलियांवाला बाग में इन तीनों ही कौमों का खून बहा था सो उधमसिंह ने इन तीनों ही कौमों की ओर से उस नरसंहार का बदला ले लिया था। नरभक्षी को उसकी ही मांद में जाकर धूल चटाने वाला यह वीर भारतवर्ष के इतिहास में नक्षत्र बनकर सदा-सदा के लिए अमर हो गया। अधिकारी कुछ और जानकारी भी चाहते थे मगर यह कहे जा रहा था—'मेरा नाम राम मुहम्मद सिंह आज़ाद है। मेरा देश हिन्दुस्तान एवं प्रदेश पंजाब है।'

गिरफ़्तारी के बाद सत्ता के अन्धों ने इन पर भी न्याय का नाटक रचा तथा बन्दी बनाकर उन्हें कैनिन रो पुलिस स्टेशन ले जाया गया था तथा बो स्ट्रीट पुलिस कोर्ट में इनके विरूद्ध सुनवाई हुई। बाद में इनका केस केन्द्रिय न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया गया। न्यायालय में एक महिला ने उधमसिंह से पूछा कि कैक्सटन हाल में जब मैं तुम्हें रोकते हुए तुम्हारे सामने आ गई थी तो तुमने मुझ पर गोली क्यों नहीं चलाई थी। उधमसिंह जी ने गंभीरता के साथ कहा—'देवी! हम हिन्दुओं के मन में नारी के प्रति वन्दनीय भाव होता

है। नारी का अपमान हम अपनी मातृभूमि के तुल्य ही मानते हैं। तुम्हें मारकर मुझे कौन सा यश प्राप्त होना था। मेरा काम तो पूर्ण हो चुका था....' इसी क्रम में उन्होंने आगे कहा– '..... जब मेरा भागने का इरादा ही नहीं था तो यह प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मैंने अपने वकीलों से भी कह दिया था कि आप क्यों समय बर्बाद कर रहे हैं। मैंने एक हत्यारे को मारा है और यह सिद्ध कर दिया था कि आप क्यों समय बर्बाद कर रहे हैं मैंने एक हत्यारे को मारा है और यह सिद्ध करना मेरा उद्देश्य था कि हिन्दुस्तानियों का खून इतना सस्ता नहीं था कि बारह हज़ार व्यक्तियों को कोई निरपराध मार दें। न्यायालय में अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा–'जलियांवाला बाग़ का पाशविक नरमेध मैंने अपने नेत्रों से देखा था। उसी दिन से अंग्रेज शासन और उसके जनरल डायर व माइकेल ओडवायर मेरी घृणा के पात्र बन गए थे। मैंने पराधीनता के अभिशाप को भोगा है। अंग्रेज़ शासन में मैंने गरीबों को भूख से तड़प-तड़प कर मरते और बेगुनाहों को मारे जाते देखा है। मैंने हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा में देकर अपने देश, भारत के सम्मान की रक्षा की है। मिस्टर जिटलैण्ड मेरी गोली से मरने से बच गया इसका मुझे खेद है। जलियांवाला बाग़ के हत्याकाण्ड के दिन मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है। सौ वर्ष तक दास्ता का जीवन बिताने की बजाए आज़ादी के लिए, देश के सम्मान के लिए जवानी में ही शहीद होना मेरे लिए और मेरे देश के लिए गौरव की बात है।'

अंग्रेज़ सरकार के न्याय के नाटक का जो अन्त होना था, वही हुआ। न्यायाधीश एटकिन्सन द्वारा उधमसिंह को मृत्यु दण्ड दिए जाने की घोषणा की गई। अभियुक्त की ओर

से कोर्ट ऑफ़ क्रिमिनल में अपील कराई गई मगर 15 जुलाई, 1940 को न्यायाधीश हम्फ्रे ने भी निचले न्यायालय के निर्णय को ही बहाल रखा। अन्ततः 31 जुलाई, 1940 को उधमसिंह ने स्वयं अपने ही हाथों से फांसी के फन्दे को अंगीकार करके अपने जीवन को सार्थकता प्रदान की। वीर सावरकर जी ने अपनी श्रद्धाजंलि देते हुए इस वीर के बारे में कहा—'इस तरह के भी देशभक्त विद्यमान हैं जो सरदार उधमसिंह की तरह बीस वर्ष तक प्रतिशोध की भावना को अपने मन में जगाए रहे और अन्त में उन्होंने वह काम कर डाला।' वह दिन भी भारतीय इतिहास में सदा स्मरणीय रहेगा जब सन् 1974 में इस महान क्रांतिकारी की अस्थियां 34 वर्षों के बाद भारतवर्ष लाई गईं तथा ससम्मान इनके नगर सुनाम में पहुंचाई गईं।

17. करतार सिंह सराभा

ज़िला लुधियाना का सराभा गांव एक क्रांतिकारी युवक के कारण संसार भर में प्रसिद्ध हो गया। इसी गांव में 24 मई, 1896 को करतार सिंह नामक युवक का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम मंगलसिंह था जिनका देहान्त उसी समय हो गया था जब करतार सिंह अभी छोटी आयु का ही था। इनका लालन-पालन इनके दादा जी ने किया। गुजरवाल स्कूल से इनकी शिक्षा आरंभ हुई, फिर आर्य स्कूल लुधियाना और अन्त में मालवा खालसा हाई स्कूल लुधियाना में इन्होंने शिक्षा ग्रहण की। जब ये नौंवी कक्षा में पढ़ते थे तो ये अपने चाचा के पास उड़िसा चले गए। वहां मैट्रिक पास करने के बाद उन्होंने कालेज की पढ़ाई आरंभ की। इनके हृदय में देश से बाहर शिक्षा प्राप्त करने की भावना पैदा हुई इसलिए इनके दादा जी ने अध्ययन के लिए इन्हें अमेरिका भेजा। सन् 1912 में वे सानफ्रांसिस्को पहुंच गए। करतार सिंह जी से वहां इमीग्रेशन अधिकारी ने पूछा, 'तुम यहां क्यों आए हो?'

'मैं पढ़ने के लिए आया हूं।' करतार सिंह ने उत्तर दिया। 'क्या हिन्दुस्तान में पढ़ने की सुविधा नहीं है?' अधिकारी ने पूछा। 'क्यों नहीं है, पर मैं उच्च शिक्षा चाहता हूं।' इसीलिए मैं कैलिफ़ोर्निया के विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए आया हूं। करतार सिंह ने उत्तर दिया।

'पर यदि तुम्हें यहां उतरने न दिया जाए तो?' अधिकारी ने पूछा।

करतार सिंह जी ने इसका बहुत ही सधा हुआ, सटीक तथा सुन्दर उत्तर दिया। यदि बुद्धिमतापूर्वक ऐसा उत्तर न देते तो संभवतः वे जीवन में वह सब कुछ न कर पाते जिसे करने से उन्हें आज भारत मां के लाडले के रूप में स्मरण किया जाता

है। इन्होंने कहा, 'मैं समझूंगा कि मेरे साथ बहुत बड़ा अन्याय हुआ। विद्यार्थियों के रास्ते में अड़चनें डालने से संसार की प्रगति रूक जाएगी, क्योंकि कौन जानता है कि मैं ही यहां शिक्षा पाकर संसार की भलाई का बड़ा भारी काम करने में समर्थ हो सकूं। उतरने की आज्ञा न मिलने पर संसार उससे वंचित रह जाएगा। करतार सिंह के इस उत्तर से वह अधिकारी बहुत प्रसन्न हुआ तथा इस प्रकार वे अमेरिका में रहने को समर्थ हुए। वहां पर करतार सिंह एक अंग्रेज़ औरत के घर में पेइंग गैस्ट के रूप में रहता था। एक दिन उस औरत ने करतार सिंह से पूछा कि तुम्हारे देश का झण्डा किस रंग का है? करतार सिंह जी इसका कुछ उत्तर नहीं दे सके मगर अब प्रतिदिन यह प्रश्न उनके दिमाग में किसी शूल की तरह चुभने लगा। उसे गहराई से इस बात का अहसास होने लगा कि अभी तो हमारे सिर पर यूनियन जैक का ही झण्डा लहरा रहा है। हमारे अपने देश का भी अलग से कोई झण्डा होना चाहिए।

धीरे-धीरे उनके हृदय में यह भावना प्रबल होती गई कि क्यों न अपने देश के झण्डे के लिए संघर्ष किया जाए? वे गुलामी को काट फैंकने के लिए मन ही मन तैयार होते गए तथा उन्होंने देश को आज़ाद कराने वाली भावना रखने वाले क्रांतिकारियों के साथ अपना सम्पर्क साधना आरंभ कर दिया। ज्यों ही उनके हृदय में भारत को स्वतंत्र कराने की भावना ने जन्म लिया तो उन्हें वहां रहने वाले भारतीय मज़दूरों के प्रति उपेक्षा से 'ब्लैक कुली' तथा 'डैम हिन्दू' आदि सम्बोधन तीर की तरह चुभने लगे। अतः उन्होंने मन ही मन यह प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक अपने देश का अलग झण्डा प्राप्त नहीं कर लूंगा तब तक चैन की नींद नहीं सोऊंगा। सराया की भान्ति अन्य क्रांतिकारी भी मन ही मन अपनी देश की स्तवंत्रता के लिए कुछ सक्रिय कार्य करना चाहते थे अतः सन् 1912 में सब ने

एक बैठक करके देश-सेवा की प्रतिज्ञा ली। डॉ. खानखोजे ने 'इन्डिपेंडेंस लीग' नाम की एक संस्था का भी गठन किया। उन दिनों सानफ्रांसिस्को में गदर पार्टी का केन्द्र सक्रियता से अपना कार्य कर रहा था। युगान्तर आश्रम नाम के इस कार्यालय में लाला हरदयाल, सोहन सिंह भकना तथा बाबा हरनाम सिंह टुण्डीलाट आदि देशभक्तों के साथ क्रांति को लेकर अब इनकी निरन्तर चर्चा होती रहती थी। दिसम्बर 30, 1913 को सैक्रामैण्टो नामक स्थान पर एक सभा हुई। इस सभा में विदेश में रह रहे हिन्दु, सिक्ख तथा मुसलमान सभी उपस्थित हुए। इस बैठक में यह निश्रय करना था कि भारत को स्वतंत्र कराने के लिए किस प्रकार से कार्य करना चाहिए। जमग्न कांसल भी इस बैठक में समय पर आ गए। करतारसिंह सराभा अपने साथी विष्णु गणेश पिंगले भी उपस्थित थे। इस बैठक में लाला हरदयाल जी ने भारत को स्वतंत्र कराने के सम्बन्ध में एक बहुत ही सुन्दर तथा प्रेरणात्मक भाषण दिया। उन्होंने भारत के गौरवमय इतिहास के अनेकों उद्धरण देकर उपस्थित लोगों में क्रांति की भावना को तीव्रता के साथ उद्वैलित किया। उन्होंने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की स्मृति को भी पुनः जागृत किया। यह उद्‌बोधन वास्तव में ही बहुत अधिक प्रेरणाप्रद था तथा करतार सिंह सराभा जी के मन में इस भाषण का बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा। कहते हैं कि भाषण सुनकर वे वहीं पर गा उठे–

चलो चलिए देश नूं युद्ध करन.....

यही आख़िरी वचन ते फ़रमान हो गए.....

उपस्थित जनता भी भावविभोर होकर उनके साथ इन पंक्तियों को गाने लगी। अब उन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने के लिए अपने आपको पूर्णतय समर्पित कर दिया। उन्हीं दिनों

ग़दर पार्टी की ओर से 'ग़दर' नामक एक पत्र निकाला गया। यह पत्र कई भाषाओं में प्रकाशित होता था। इसके गुजराती संस्करण का सम्पादन खेमचन्द, उर्दू संस्करण का गोधाराम, मराठी संस्करण का विष्णु गणेश पिगले एवं डॉ. खानाखेजे और गुरमुखी का गोपालसिंह करते थे। इस पत्र में लाला हरदयाल जी के क्रांतिकारी लेख तथा सराभा और बाबा हरनामसिंह आदि की ओजस्वी कविताएं भी प्रकाशित होती थीं। सराभा जी भी सम्पादन का काम करने के साथ-साथ कम्पोज़िंग आदि भी बड़ी लगन के साथ करते थे।

अंग्रेज़ सरकार का ध्यान विश्वयुद्ध की ओर बंटा हुआ देखकर पार्टी द्वारा कुछ क्रांतिकारियों को भारत भेजने का फ़ैसला लिया गया। हालांकि 'इण्डिया सेफ़टी एक्ट' के अन्तर्गत अंग्रेज़ सरकार ने देशभक्तों को पहले से ही गिरफ़्तार करने की योजना बना रखी थी। अतः कुछ देशभक्तों को तो सरकार ने धर-दबोचा मगर सरकार की आंखों में धूल झोंक कर बाबा हरनाम सिंह, ढूण्डीलाट, बन्तासिंह संगोवाल तथा करतार सिंह सराभा आदि सकुशल भारत पहुंच गए। विष्णु गणेश पिंगले, रास बिहारी बोस तथा वाराणसी षडयंत्र केस में चर्चित देशभक्त शचीन्द्र नाथ सान्याल आदि भी पंजाब पहुंच चुके थे। सराभा निरन्तर क्रांतिकारियों के केन्द्रबिन्दु बने रहे। भाई परमानन्द जी के निर्देशन में कपूरथला के एक मंदिर में एक विशेष बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक में करतार सिंह सराभा, पण्डित परमानन्द, रासबिहारी बोस, शचीन्द्र नाथ सान्याल तथा गणेश पिंगले आदि क्रांतिकारियों ने भारत वर्ष को स्वतंत्र कराने के लिए सन् 1857 जैसी योजना बनाई। तय हुआ कि 21 फ़रवरी 1915 को विभिन्न स्थानों पर एक साथ विद्रोह करके देश को स्वतंत्र करा लिया जाए। सेना में बग़ावत कराने के लिए इन क्रांतिवीरों का आगरा, कानपुर, इलाहाबाद,

वाराणसी, लखनऊ, लाहौर और फ़िरोजपुर आदि छावनियों से भी सम्पर्क हो चुका था। करतार सिंह सराभा जी को पंजाब के संगठन का कार्यभार सौंपा गया। आने वाली पीढ़ियों को संभवतः यह बात अविश्वसनीय लगेगी कि मात्र अठारह वर्ष की आयु वाले इस वीर बहादुर को यह गुरूभार सौंपा गया तथा इसने अपनी अद्‌भुत प्रतिभा और साहस तथा सूझ-बूझ से इस कार्य को बखूबी निभाया। करतार सिंह सराभा जी अक्सर एक गीत गाया करते थे–

सेवा देश की जिन्दड़िये बड़ी औखी,
गल्लां करणियां ढेर सुखल्लियां वे।
जिन्हां इस सेवा विच पैर पाया,
उन्हां लख मुसीबतां झल्लियां वे॥

वास्तव में ही देश भक्ति की बातें करना तो बहुत आसान है मगर जिन लोगों ने भारतवर्ष को स्वतंत्र कराने के लिए अपने जीवन को तिल-तिल करके जलाया है वही इस बात को जानते हैं कि यह काम कितना कठिन व संघर्षपूर्ण है। सराभा जी के इस संघर्ष के बारे में शचीन्द्र नाथ सान्य.ल जी ने लिखा है कि करतार सिंह प्रतिदिन साइकल पर बैठकर देहातों में लगभग 40-60 मील का चक्कर लगाते थे और गांव-गांव में जाकर क्रांति का प्रचार करते थे। अजीब बात तो यह थी कि इतना अधिक परिश्रम करके भी वे कभी थकते नहीं थे। लगता यह था कि वे जितना अधिक परिश्रम कर रहे हैं उतनी ही उनमें फुर्ती आ रही होती थी। वे देहातों का चक्कर लगाने के बाद फ़ौजों में भी काम कर रहे थे। पर इस काम के सम्बन्ध में जिस प्रकार सावधानी बरतनी चाहिए थी, उस प्रकार बरती नहीं गई। एक बार ऐसा हुआ कि करतार सिंह को पकड़ने के लिए पुलिस वालों ने एक गांव को घेर लिया। उस समय सराभा जी गांव के ही कहीं आस-पास थे। पुलिस की ख़बर

लगते ही वे साइकल से उसी गांव में आ धमके। पुलिस उन्हें पहचानती नहीं थी इसलिए वे बच गए, यदि वे भागने की कोशिश करते तो पकड़ लिए जाते।

इधर क्रांतिकारियों ने बग़ावत की पूरी तैयारी कर ली। शस्त्र आदि का प्रबन्ध हो गया। कुछ डकैतियां डालकर धन का भी प्रबन्ध कर लिया गया। क्रांतिकारियों में अपार उत्साह था मगर क्रांति का बिगुल बजने से पूर्व ही गदर पार्टी के ही एक गद्दार कृपालसिंह ने लालच में आकर पुलिस को खबर देकर सारी योजना का भण्डाफोड़ कर दिया। पुलिस का दमनचक्र चला तथा खोज-खोजकर क्रांतिवीरों को पकड़ा जाने लगा। दोषियों के साथ-साथ बहुत से निर्दोष भी पकड़े गए। बगावत करने वाले बहुत से फ़ौजी भाईयों को भी पकड़कर कैद कर लिया गया। करतार सिंह सराभा हार मानने वाले नहीं थे। वे पुलिस की आंखों में धूल झोंकते रहे। इन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के मार्ग से रूस भाग जाने की योजना बनाई। कुछ और क्रांतिकारी साथी भी इनके साथ थे। रात काटने के लिए जब ये सरगोधा रूके तो किसी ने उनके वहां होने की सूचना पुलिस को दे दी। इस प्रकार उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। उस समय भी इन्होंने निर्भीकता से कहा था, नाम–करतार सिंह, निवासी भारतीय, अपराध देशभक्ति। गिरफ़्तार करके इन्हें लाहौर की सैन्ट्रल जेल में रखा गया। सराभा जी अभी भी हार मानने वालों में से नहीं थे। उन्होंने सलाखें तोड़कर जेल से बाहर निकलने का प्रयास भी किया मगर यहां भी उन्हें पकड़ लिया गया। कहते हैं कि जेल में इनसे मिलने के लिए इनके सम्बन्धी आए तथा बूढ़े दादा ने मुलाकात में कहा–'बेटा तुम किसके लिए मर रहे हो? तुम हम लोगों को इस तरह अनाथ छोड़े जा रहे हो?'

इस पर सराभा जी ने कहा– 'ठीक है, लोग मुझे गालियां देते हैं और यह भी आपको नहीं दिखाई दे रहा है कि मेरे मरने से किसी को लाभ होगा, पर मरना तो है ही। मैं आपसे एक बात पूछता हूं दादा जी कि अमुक व्यक्ति का क्या हुआ?'

दादा जी बोले– 'वह ताऊन से मर गए।'

सराभा जी ने फिर पूछा– 'अमुक व्यक्ति कहां है?'

दादा जी बोले– 'वह हैज़े से मर गए।'

अब सराभा जी ने कहा– 'तो क्या आप इसी पर ग़म कर रहे हैं कि मैं ताऊन से नहीं मर रहा, हैज़े से नहीं मरा, बिस्तर पर महीनों सड़कर नहीं मरा, क्या उस मौत से यह मौत अच्छी नहीं?' सराभा जी का यह उत्तर दादा जी को निरूत्तर करने के लिए पर्याप्त था।

इस षड्यंत्र में कुल 61 अभियुक्तों को शामिल किया गया और इस षड्यंत्र के नेता करतार सिंह सराभा, भाई परमानन्द, विष्णु गणेश पिंगले, जगतसिंह, हरनाम सिंह करार दिए गए। कुल 404 सरकारी गवाह पेश हुए और सफ़ाई की ओर से 228 गवाह पेश हुए। करतार सिंह को मुकदमे का कुछ मालूम नहीं था। वे बढ़-बढ़कर अपनी सारी बातें बताने लगे, यहां तक कि मजिस्ट्रेट भी शरमा गया और करतार सिंह से कहा–आप समझ-बूझकर बात करिए। आप जो कुछ कह रहे हैं उसका नतीजा मृत्युदण्ड हो सकता है। तब करतार सिंह ने हंसते हुए कहा–'मुझे मालूम है, आप मुझे फांसी ही दे सकते हैं। मैं इससे डरता नहीं हूं। इन्होंने अपने एक ब्यान में कहा–'मेरी एकमात्र उच्चाकांक्षा यह है कि मैं अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र देखूं। जो कुछ भी मैंने अब तक किया है वह इसी उद्देश्य से किया है। जहां तक मुझे याद है, मैंने कोई भी काम किसी व्यक्ति, जाति, धर्म या नस्ल के प्रति घृणा

के कारण नहीं किया है या अपना व्यक्तिगत हित सिद्ध करने के लिए नहीं किया है। बस मुझे एक ही चाह है—स्वतंत्रता और यही मेरा एकमात्र स्वप्न है।'

सरकार के न्याय का नाटक चलता रहा तथा 13 सितम्बर को इस नाटक का अन्त हुआ। चौबीस लोगों को फांसी की सज़ा दी गई जिनमें करतार सिंह सराभा, हरनाम सिंह, जगत सिंह तथा पिंगले आदि थे। बाद में 15 नवम्बर के अपने एक आदेश में वायसराय ने चौबीस में से सतरह व्यक्तियों की फांसी की सज़ा निरस्त कर दी तथा केवल सात व्यक्तियों को ही फांसी की सज़ा देने का आदेश हुआ। इन सतरह लोगों में एक भाई परमानन्द जी भी थे। अन्य छः लोगों को उच्च अदालत में अपील करने की छूट दी गई मगर उन्होंने ऐसा करने से मना कर दिया और फांसी के आदेश बरकरार रहे। अन्य अनेक क्रांतिकारियों के समान सराभा जी भी अद्‌भुत देशभक्त थे। इतनी छोटी सी आयु में इतना यश प्राप्त करना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कहते हैं कि फांसी की सज़ा का आदेश सुनने से वे बहुत प्रसन्न हुए थे तथा फांसी के दिन तक इनका दस पौण्ड भार बढ़ गया था। आत्मा के पुनर्जन्म पर विश्वास करने वाले इस साहसी युवक ने जज से कहा—'मुझे जल्दी फांसी दो, ताकि मैं फिर से इस धरती पर जन्म लेकर अंग्रेज़ हकूमत के ख़िलाफ़ लड़ी जा रही जंग में हिस्सा ले सकूं।' अन्ततः 17 नवम्बर 1915 को इन्हें फांसी दे दी गई तथा भारत मां का यह सपूत भारत वर्ष के क्रांतिकारी इतिहास में सदा सर्वदा के लिए अमर हो गया।

❑❑❑

6. आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश के प्रान्तीय आर्यवीरदल संचालक वेद प्रचार अधिष्ठाता, महामंत्री तथा उपाध्यक्ष, वरिष्ठ उपाध्यक्ष और कार्यकारी अध्यक्ष के पदों पर रहकर राष्ट्र एवं समाज सेवा का कार्य..

7. संरक्षक सार्वदेशिक आर्यवीर दल। 8. सदस्य-सार्वदेशिक धर्मार्य सभा।

9. संस्थापक अध्यक्षः वैदिक वशिष्ठ आश्रम (महर्षि दयानन्द धाम)।

10. संस्थापक : 'वैदिक वशिष्ठ पत्रिका' मासिक

11. वैदिक प्रवक्ता के रूप में नेपाल, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, चण्डीगढ़, आन्ध्रपदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान आदि के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में मानव मूल्यों की स्थापना हेतु सफलतम प्रचार कार्य।

12. शोधः आचार्य भगवान देव 'चैतन्य' की काव्य यात्रा नामक शोधग्रन्थ एक प्राध्यापक द्वारा एम.फिल. के लिए कुरूक्षेत्र यूनिवर्सिटी में प्रस्तुत।

13. राष्ट्रीय बौद्धिकाध्यक्ष : आर्य युवक परिषद्।

14. पुरस्कार व सम्मानः आर्य युवक परिषद दिल्ली (1975), कला संस्कृति भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ मथुरा (1979), भारत लेखक एकता संघ शिमला (1983), आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश (1989), श्री आर.आर. चौहान स्मृति पुरस्कार (1992), बागर साहित्य पुरस्कार (1993-94) कला संस्कृति भाषा अकादमी (1994) अम्मा कहानी, महर्षि सन्दीपनी राष्ट्रीय वेद प्रतिष्ठान मध्य प्रदेश (1995), स्वामी शिवमुनि परिव्राजक स्मृति पुरस्कार गुजरात (1996), पानीपत साहित्य अकादमी (1997), दुर्गावती फेलोशिप एवार्ड जयपुर राजस्थान (1998), आर्ययुवक परिषद नई दिल्ली द्वारा 'आर्य श्रेष्ठी अवार्ड' (1999), विक्रमशीला हिन्दी विद्यापीठ भागलपुर : विद्यावाचस्पति, महाराष्ट्र दलित साहित्य अकादमीः शताब्दी उत्तम नागरिक पुरस्कार (2000), जैमिनी अकादमी हरियाणा : शताब्दी रत्न सम्मान (2000), बनारसीदास वर्मा पुरस्कार हापुड़ (2001), आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान (2002), रामवृक्ष बेनीपुरी जन्म शताब्दी सम्मान (2002), सत्यार्थ रत्न (2003), अमेरिकन बायोग्राफीकल इंस्टीच्यूट द्वारा 'वर्ड मैडल ऑफ ऑनर' के लिए नामित (2003), अम्बिका प्रसाद स्मृति रजत अलंकार-2005, सारस्वत सम्मान-2006, साहित्य सागर-2006, आर्य शिक्षक रतन–2006, साहित्य अकादमी पुरस्कार (2004)2007।

15, वानप्रस्थ में प्रवेश : 1 अगस्त, 2006

81/एस-4, सुन्दरनगर, कालोनी, जिला मण्डी (हिमाचल प्रदेश)
दूरभाष : 01907/63092, मोबाई : 94180-53092

संक्षिप्त परिचय : महात्मा चैतन्य मुनि

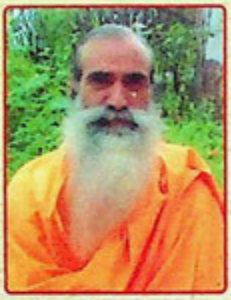

1. प्रकाशित कृतियां : *काव्य*-सुबह की तलाश में, हादसों के बीच, खण्डहर का सफ़र, आकाश अनन्त है, क्षितिज के इधर। *कथा*-अपने अपने इन्द्र धनुष, शब्द शब्द सोच है, ज़मीन तलाशती जड़ें, मूर्दे की लकड़ी, शिखर शेष है। *धार्मिक*-सद्बुद्धि की कामना, मुक्ति एवं मुक्ति के साधन, उत्कर्ष की ओर, तप का वास्तविक स्वरूप, चतुर्दिक उन्नति का आधार-स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान क्यों और कैसे? सत्संग साक्षात् कल्पतरू, मनुष्यता के आठ सूत्र, मुमुक्षत्व का महत्व, गीता पर एक हजार एक प्रश्नोत्तर, सोलह संस्कारों का महत्व, गुरू और उसका महत्व, श्री कृष्ण भक्ति रहस्य, उपनिषद् पर एक हजार एक प्रश्नोत्तर, वेद की महत्ता एवं ईश्वर सिद्धि, प्रभु से मित्रता करें, विद्वानों का संग क्यों करें, अन्य कोई मार्ग नहीं आदि। *हिमाचली*-उच्ची धारा रा धूपा। *जीवनी*-क्रान्ति के अग्रदूत। *प्रैस में*-नरक होता आदमी, दूसरा रास्ता नहीं, यायावर तेरे प्रतिरूप, किस विध मिलना होए, आ अब लौट चलें, उपासना क्यों करें? धर्म का व्यवहारिक स्वरूप सत्यमेव जयते, दिव्य के व्योम पर, क्या पुनर्जन्म नहीं होता? आदि।

2. आकाशवाणी से प्रसारण (निरन्तर 1974 से)।

3. सम्पादन आर्य प्रतिनिधि सभा की पत्रिका 'आर्यवन्दना' का चौदह वर्ष तक अनेक पत्रिकाओं में सम्पादन सहयोग, हजारों रचनाओं का प्रकाशन, अनेक संकलनों में भी रचनाएं प्रकाशित/पुरस्कृत।

4. सर्वेक्षण एवं संचालन – हिमाचल प्रदेश भाषा एवं संस्कृति अकादमी के अन्तर्गत कार्य। अनेक साहित्यिक, काव्य, साक्षरता, आध्यात्मिक, योगशिविरों/सम्मेलनों का संचालन एवं सहभागीता।

5. हिन्दी साहित्य संगम (रजि.) के महामंत्री, प्रधान तथा संरक्षक, उत्कर्ष कला केन्द्र (रजि.) के अध्यक्ष, केन्द्रिय हिंदी निदेशालय के अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय साहित्य परिषद के संरक्षक आदि अनेक संस्थाओं एवं पदों से जुड़कर उल्लेखनीय कार्य व साहित्य एवं हिन्दी सेवा। हिन्दी को हिमाचल प्रान्त की भाषा बनाने के लिए एक लाख लोगों के हस्ताक्षर करवा कर तत्कालीन मुख्यमंत्री को सौंपे।

कृ.पृ.उल्टें